Chap-6

षष्ठम अध्याय

डा० भारती जी का कथा-साहित्य

षष्ठम अध्याय

डा० भारतीय का कथा-साहित्य

गद्य-साहित्य के विविध रूप और गद्यकार डा० धर्मवीर भारती

कहना न होगा कि स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी के साहित्यकारों पर व्यापक रूप से प्राय: फ्रायड, युंग, कार्ल मार्क्स, ज्यां पाल सार्त्र तथा कामू इत्यादि पाश्चात्य चिन्तकों के सिद्धान्तों एवं दर्शनों काप्रभाव पडा है। इन सबके प्रभाव-स्वरूप हिन्दी साहित्य में यथार्थपरक दृष्टि को लेकर प्राय: दो प्रमुख धाराएं समाज-प्रधान यथार्थवाद एवं मनो- विश्लेषण प्रधान यथार्थवाद के रूप में प्रस्फुटित व विकसित हुई। व्यक्ति-यथार्थ का सम्बन्ध मनोविश्लेषण प्रधान यथार्थवाद से ही जुड़ता है। मनोविश्लेषणात्मक यथार्थवाद के स्तर पर वस्तु एवं शिल्प के क्षेत्र में अनेकश: अभिनव प्रयोगों का सूत्रपात हुआ है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डा० रांगेय राघव; डा० प्रभाकर माचवे, अज्ञेय, निर्मल वर्मा, मोहन राकेश, मन्नू भण्डारी, राजेन्द्र यादव, अमरकान्त, भीष्म साहनी, कमलेश्वर तथा डा० धर्मवीर भारती आदि साहित्यकारों के नाम उक्त प्रयोगकर्ताओं में विशेष उल्लेखनीय हैं। इस दिशा में वस्तु व शिल्प के वैविध्य के आधार पर गद्य-साहित्य के रूपों में भी विविधात्मक परिवर्तन हुए हैं। स्वातंत्र्योत्तर कालीन हिन्दी साहित्य का रेखाचित्र, आत्म-संस्मरणात्मक, डायरी परक, आत्मकथात्मक, यात्रात्मक, पत्रात्मक, इण्टरव्यू व रिपोर्ताज परक साहित्य इसी तथ्य का परिचायक है। इनसे गद्य-साहित्य की नयी सीमाओं एवं सम्भावनाओं को उनके विकास की दिशा में नये नये आयाम प्राप्त हुए हैं।

स्वातंत्र्योत्तर कालीन नई पीढ़ी के मूर्धन्य साहित्यकारों में डा० भारती जी ने बहुविधाश्रित अपनी साहित्यिक प्रतिभा के अनूठेपन से बहु भाषा-क्षेत्र व्यापक लोकप्रियता को सम्पादित करते हुए हिन्दी साहित्य के विकास में अपना महत्वपूर्ण

योगदान किया है। उन्होंने उपन्यास-कहानी, नाटक-एकांकी, निबन्ध और समीक्षा जैसे साहित्य के सभी अंगों वा विधाओं का मात्र संस्पर्श ही नहीं किया वरन् उन्हें अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की प्रखरता से कला-शिल्प की सान पर खराद-तराश कर और भी नव्य रूप देने का गौरव भी प्राप्त किया है। इस दिशा में उन्होंने आशातीत लोकप्रियता प्राप्त हुई है। सम्प्रति वे हिन्दी की अत्यंत लोकप्रिय साप्ताहिक पत्रिका 'धर्मयुग' के मुख्य सम्पादक पद के दायित्व का बड़ी कुशलतापूर्वकनिर्वाह कर रहे हैं। सम्पाद पद को ग्रहण करने के पश्चात् निबंध-संग्रह 'मुक्त-क्षेत्रे -युद्ध -क्षेत्रे' के अतिरिक्त अद्यावधि कोई नवीन कृति पाठकों के हाथ नहीं लग पाई है। एक प्रगतिशील एवं प्रयोग-प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार अपनी छायेव लेखनी से अधिक समय तक दूर नहीं रह सकता। हो सकता है उनका 'इतर साहित्य किसी कारणवश अप्रकाशित ही रह गया हो जिनसे सम्भव है कि उनकी सर्जनात्मक संचेतना अपने विकास के और भी नवीनतम मोड़ों को धारण करती हुई अग्रसर हुई हो। उनके अप्रतिम साहित्यिक गौरवपूर्ण स्थान को निर्दिष्ट करते हुए अज्ञेय जी ने कहा है - "धर्मवीर भारतीहिन्दी की उन उठती हुईप्रतिभाओं में से हैं जिन पर हिन्दी का भविष्य निर्भर करता है और जिन्हें देखकर हम कह सकते हैं कि हिन्दी उस अंधियारे अन्तराल को पार कर चुकी है जो इतने दिनों से मानो अन्तहीन दीख पड़ता था। ----प्रतिभाएं और भी हैं, कृतित्व औरों का भी उल्लेखनीय है पर उनसे धर्मवीर जी में एक विशेषता है। वह केवल अच्छे, परिश्रमी, रोचक लेखक नहीं हैं, वह नयी पौध के सब से मौलिक लेखक हैं।"[1]

डा0 भारती जी के कथा-साहित्य पर दृष्टि-निक्षेप करने से पूर्व उनके गद्यकार के रूप को भी समझ लेना आवश्यक हो जाता है। डा0 भारती जी

1- दे0 सूरज का सातवां घोड़ा' की भूमिका-

ने अपनी छात्रावस्था से ही विशेषकर बी0 ए0 से ही लिखना प्रारंभ कर दिया था। और उनका विधिवत् प्रकाशन तो बहुत समय के बाद हुआ। उनके प्रकाशित ग्रंथों को देखने से पता चलता है कि उनका गद्य-लेखन काव्य-लेखन से कुछ समय पूर्व का रहा है। उनका प्रथम काव्य-संग्रह 'ठण्डा लोहा' सन् 1952 में प्रकाशित हुआ। यद्यपि उनकी काव्य-प्रतिभा से हिन्दी जगत् का पाठक द्वितीय 'तार सप्तक' (1951) से ही परिचित हो गया था किन्तु इसके पूर्व 'गुनाहों का देवता' (1949) तथा 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' (1949) के प्रकाशन द्वारा पाठकों को उनके गद्य-लेखक का भी परिचय मिल चुका था। समय की दृष्टि से दोनों प्रकार के लेखन-काल में कोई विशेष लम्बा अन्तर नहीं रहा है। अत: यह कहा जा सकता है कि उनका गद्य-लेखन एवं काव्य-लेखन दोनों ही एक साथ चले हैं। उनका गद्य-साहित्य काव्य-साहित्य की अपेक्षा संख्या की मात्रा में अधिक लिखा गया है किन्तु प्रभाव व मूल्य-चेतना की दृष्टि से उनका कवि रूप ही अपनी प्रधानता पा लेता है। यही कारण है कि उपन्यास, कहानी व नाटकादि गद्य-रूपों में भी प्रसाद, निराला, अज्ञेय प्रभृति साहित्यकारों की भाँति उनका कवि-रूप नीर-क्षीर की नाईं एक दूसरे में ऐसे घुल-मिल गया है कि उन दोनों के तत्वों का विश्लेषण तो किया जा सकता है किन्तु उन्हें पृथक करना सहज नहीं। अत: दोनों ही रूप अपने अपने स्थान पर प्रतिष्ठित होने के कारण परस्पर स्पर्धात्मक हैं। तात्पर्य यह है कि डा0 भारती जी का गद्यकार उनके कवि रूप की तुलना में तनिक भी पीछे रहकर अपने गौरव को घटने नहीं देता। उनकी कलम में यह एक खूबी है कि वह काव्य के अतिरिक्त एक साथ ही उतनी ही गम्भीरता, रोचकता एवं प्रभावोत्पादकता पूर्ण ढंग से गद्य-विधा के किसी भी रूप से बड़ी सरलता के साथ हाथ मिला सकती है।

हिन्दी साहित्य अपने विकास-काल में सदैव प्रतिक्रियावादी रहा है। डा0 भारती जी के साहित्यिक परिप्रेक्ष्य के संदर्भ में स्थूल रूप से उक्त प्रतिक्रियावादी

साहित्य की चेतना को छायावाद, यथार्थवाद और मनोविश्लेषणवाद जैसे त्रयात्मक स्तरों पर देखा जा सकता है। हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर साहित्य सर्वाधिक रूप से प्राय: उपरिकथित पिछले दो रूपों को ही आत्मसात् कर विकसित हुआ है। डा० भारती जी का गद्य-साहित्य अपनी निजी विशेषता के साथ उक्त तीनों की यथानुकूल छाया को ग्रहण कर चला है। उनमें छायावाद की सी रोमैण्टिकता होने पर भी उसकी अमांसल वायवीयता नहीं है, और यथार्थवाद की स्थूलता होने पर भी उनमें मनोवैज्ञानिक स्तर पर मन की भीतरी पर्तों को उद्घाटित करने की कलात्मक प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से उनके गद्य-कार के रूप को मुख्यतया दो रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम कैशोर्य भावुकता एवं कल्पना शीलता के रंग-भीने आदर्शों से घिरा हुआ रोमैण्टिक या रूमानी रूप और दूसरा वादों व सिद्धान्तों की अतियों से परे यथार्थवादी रूप। यहां एक बात स्मरणीय है कि प्रतिक्रियावादी साहित्य प्राय: अपने युग विशेष की उपज होने के कारण स्वयंभूत ही होता है। उसके निर्माण में कार्य-कारण श्रृंखला अवश्य ही बनी रहती है। डा० भारती जी ने कुछ चर्चास्पद अपवाद के होते हुए भी सर्वाधिक रूप में तथाकथित युग-सापेक्ष स्वयंभूत साहित्यिक संचेतना को ही अपने साहित्य का आधार बनाया है। वे किसी भी प्रकार के मतवादों, सिद्धान्तों व प्रतिमानों से आबद्ध होकर साहित्य-सृजन करने के पक्षधर नहीं रहे हैं। क्योंकि इससे साहित्यकार की मौलिक प्रतिभा के स्वतंत्र-विकास का पथ अवरुद्ध ही नहीं होता अपितु उसका साहित्य भी प्रचारात्मक हो जाता है। इस बात को उन्होंने अपने साहित्य में कहीं व्यंग्य तो कहीं गम्भीर रूप से सोचा है। 'बाण भट्ट की आत्मकथा' (काव्य), 'गुलीवर की दूसरी यात्रा' (निबंध) तथा 'आवाज का नीलाम' (एकांकी) आदि ऐसी ही रचनाएं हैं जिनसे ऊपर निर्दिष्ट तथ्य की पुष्टि हो जाती है। अत: कहना न होगा कि वे आधुनिक जीवन को युगीन परिप्रेक्ष्य में प्रतिबिंबित करने में सहायक व आवश्यक विचारों के उपकरणों को ही प्रश्रय देते हैं। इस दृष्टि से देखने पर उनके साहित्य में किसी भी प्रकार के संकीर्ण मतवादों पर आधारित पूर्वाग्रहों या अत्याग्रहों की आसक्ति व अभिरुखता का प्रश्न ही नहीं उठता।

डा0 भारती जी के गद्य-साहित्य की प्रमुख भाव-भूमि प्राय: उनके मन को बहुत अच्छी लगनेवाली प्रेम की मधुराई और पावनता की रोमैण्टिक आदर्श-भावना से समुद्भूत है। किन्तु कृतियों के आद्योपान्त अध्ययन से यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि वैयक्तिक प्रेम के पवित्रतावादी आदर्श के अति उच्चतम शिखर पर रहकर बहनेवाली उनकी प्रमुख भाव-धारा रूमानियत को छोड़कर जीवन-यथार्थ के समस्त घात-प्रतिघातों से प्रभावित होती हुई अंतत: जन-विराट की व्यापक चेतना पर अपने अस्तित्व को विसर्जित कर देती है। तात्पर्य यह है कि डा0 भारती जी के कलाकार का जो प्रारंभिक रूप रूमानी आदर्शवादी वातावरण के तारक-पुष्पों की सूक्ष्म किरणों के रंगों से रंगायित रहता है वह अन्ततोगत्वा जीवन-यथार्थ के गहरे रंगों की दीप्ति पा लेता है। इस दृष्टि से वे यथार्थोन्मुख आदर्श-वादी साहित्यकारों की पंक्ति में समादृत हो जाते हैं। इस स्तर पर उनका कला-कार प्रेम के माध्यम से सामाजिक परिवेश में व्यक्ति द्वारा भोगी हुई सामाजिक विसंगतियों एवं अनैतिकताओं के यथार्थ स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए मानस-पटल पर करुणा की छाप छोड़ जाता है। भाषा शैली भी रूमानी कल्पनापरक आलंकारिक ऊंचाइयों को छोड़कर एक सीधे ढंग से जीवन की व्याख्या या आलोचना के स्तर से गुजरने लगती है। यहां इसका एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

'जिन्दगी कितनी हमागीर है जितनी पुरशोर, और इस शोर में नग्मों की हकीकत कितनी ? अब हड्डियां, नसें, प्रेसरप्वाइण्ट पट्टियां और मलहमों में दिन बीता जाता है।'[1] उक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि डा0 भारती जी का रूमानी आदर्शवादी रूप जीवन की कठोरतम नग्नानुभूतियों की स्थिति में

1- गुनाहों का देवता- पृ0 297

लड़खड़ाकर जब गिरने लगता है तब उसके भीतर छिपा हुआ यथार्थवादी रूप सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपनी सशक्त अभिव्यक्ति के लिए अपने कलाकार के हाथ से कलम छीन कर अपनी छटपटाहट भरी संवेदनाओं की मार्मिक व्यंजना करने लगता है। इस धरातल पर डा0 भारती जी का कलाकार एक साथ हीसृजनात्मक चेतना -प्रक्रिया के समानान्तर स्तर पर सृजक, आलोचक एवं पाठक के त्रिविध आयामों से अभिगमित होता हुआ दृष्टिगत होता है। जब एक सशक्त व समर्थ साहित्यकार जीवन यथार्थ की आलोचनात्मक प्रक्रिया के आयामों से गुजरता है तब उसकी अन्तश्चेतना अति प्रबलावेग से विद्रोहात्मक शक्ति का रूप धारण कर सामाजिक विद्रूपताओं और विषमतामूलक परिस्थितियों के प्रति ललकार उठती है।

हिन्दी साहित्य की मूल चेतना प्राय: अभिजात्य वर्ग की विरोधिनी रही है। आधुनिक काल में यह चेतना प्रेमचंद, निराला आदि से प्रवर्तमान होकर आगे के साहित्यकारों से अपना विकास पाती रही है। इन्होंने एक बड़े व्यापक फलक परजन-संवेदना को आत्मसात् करते हुए जनवादी साहित्य की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। आधुनिक साहित्य ने प्रधान रूप से पुरानी नीतियों व मान्यताओं पर आधारित खोखली आदर्शात्मक व्यवस्थाओं के प्रति वर्ग-संघर्षपरक चेतना एवं मानव मूल्यपरक नवीन विचारधारा को जगाकर सामाजिकता को विद्रोहात्मक ऊर्जा प्रदान की है। एक क्रान्तिकारी सजग व समर्थ लेखक के नाते डा0 भारती जी ने अपने भावुकतावादी रूमानी व्यक्तित्व को यथार्थ की पथरीली व कंटकापन्न भूमि की ओर मोड़ लिया है। उन्होंने अपने साहित्य में परम्परा-मुक्त अनावश्यक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं नैतिक कुप्रथाओं, व्यवस्थाओं व रूढ़ विचारों को मानवता के सहज विकास में बाधक मानते हुए अपनी प्रगतिशील विद्रोहात्मक चेतना -का परिचय दिया है। सन् 1942 के 'बंगाल का अकाल' पर आधारित कहानियां 'मुर्दों का गांव' शीर्षकान्तर्गत 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह

में संकलित है। उनमें ब्रिटिश विरोध के साथ ही पूंजीपति वर्ग पर की गई कटु फटकार एवं उत्पीडितों-उपेक्षितों के प्रति उद्वेलित अपनी संवेदनाएं और प्रतिक्रियाएं उनके इसी क्रान्तिकारी विद्रोहात्मक रूप को जहां उजागर कर देती है वहीं उनके मानवोपासकता के रूप की भी झांकी करा देती है। वे मानते हैं कि- 'जहां के लोग भूख से मरते हों, वहां सौन्दर्य, कला, जवानी, जीवन सभी मौत की तराजू पर तुलते हैं। अत: वह कला जीवन दायिनी तभी हो सकती है जब उसे भूख न हो। तभी साहित्यकार भी प्रतिष्ठित होगा।'[1] जीवनदायिनी कला का साहित्यकार मरी हुई जिन्दगी पर केवल आंसू ही नहीं बहाता वरन् उन आंसुओं के तप्त बिन्दुओं से वीर्यता, शक्ति व संकल्पहीन मृत: प्राय: समाज के पुनर्जीवन के लिए अमृत तत्वों की भी खोज कर लेता है। उनकी कृतियों के अन्त में अभिव्यंजित 'नया मानव', 'नई संस्कृति' व 'नई आस्था' की भावना इसी तथ्य की द्योतक है। वस्तुत: उक्त क्रान्त्यात्मक चेतना बाहरी न होकर भीतरी है जो बाह्य-जगत् के काया-कल्पार्थ आत्म-परिवर्तन को अपना प्रमुख लक्ष्य बनाकर चली है। यही कारण है कि उनके समग्र साहित्य में मानव-मूल्यों की सर्वात्मवादी विचारधारा अपने प्रबलतर रूप में मुखरित हो सकी है।

डा0 भारती जी का कथा-साहित्य : उपन्यास 'गुनाहों का देवता' :

प्रस्तुत उपन्यास चन्दर और सुधा के जीवन की करुणा-द्रवित दुखान्त प्रेम-कथा पर आधारित है। कथ्य की संवेदनापरक सम्प्रेषणशीलता एवं शैली-शिल्प की नाटकीय कलात्मकता इसकी प्रसिद्धि का कारण है। इसकी संक्षिप्त

1- दे0 क0 सं0 'चांद और टूटे हुए लोग' की 'कफ़न और मुर्दे' कहानी-पृ0 136

कथा निम्नांकित है। 'चन्द्रकुमार कपूर (चन्दर) प्रयाग विश्वविद्यालय में इकनामिक्स विषय का रिसर्च-स्कालर है। उसके निर्देशक डा0 शुक्ला साहब उसकी अप्रतिम प्रतिभा के कायल हैं। उनका पिता तुल्य स्नेह सम्प्राप्त कर वह उनके परिवार का अभिन्न अंग रूप हो जाता है। उनकी एकलौती पुत्री सुधा आठवें दर्जे से ही चन्दर के स्नेह-शासन में रहते हैं। दोनों ही अपने प्रेम को प्रारंभ से ही पवित्रतावादी आदर्श की ऊंचाई पर रखते हैं। अचेतन मन से दोनों एक दूसरे से अलग रहकर जीना नहीं चाहते। किन्तु सामाजिक मर्यादा के बन्धन आड़े आने पर सुधा का विवाह उसकी इच्छा के विपरीत चन्दर के ही दोस्त कैलाश से हो जाता है। सुधा के विवाहोपरांत चन्दर के जीवन में एक बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है। चन्दर के अभाव में एक क्षण भी जीवित न रहने की स्थिति में भीतर ही भीतर घुलकर मिटती हुई सुधा को देखकर चन्दर अपने प्रेमादर्श को ऊंचाई से गिरते हुए पाता है। अतः उसका प्रेम घृणा में बदल जाता है। बर्टी की बात उसे और भी प्रभावित कर जाती है कि सेक्स नारी के जीवन का अंतिम सत्य है। जो कुंवारे जीवन में पति और विवाहित जीवन में प्रेमी की भूख होती है। सुधा के पहली बार मायके आने पर वह उससे दूर हटता रहता है। उसकी अप्रसन्नता सुधा के मन0 मन को और भी कचोट देती है। वह अपने विवाह के चूड़े और बिछिया उतार कर छत पर फेंक देती है। इससे चन्दर का रुख बदलता है वह स्वीकार करता है कि 'खुद भी इधर घुलता रहा और सुधा को भी इतना दुखी कर दिया।'[1] किन्तु इस बीच वह स्वयं भी अपने आदर्श की ऊंचाइयों पर स्थिर नहीं रह सका। उसका अन्तर्मन वासना की तृप्ति के लिए इसाई लड़की डिक्रूज और बिनती के मांसल-सौंदर्य से सम्मोहित होकर गुनाहों की रंगिनियों से खिलवाड़ करने लग जाता है। अतः वह देवता के स्तर से गिर जाता है। इस पर उसका अन्तर्मन उसे खूब धिक्कारता है। एक दिन दिल्ली में दूसरी बार सुधा से मिलने पर अपनी वासना का नाटक भी करता है। उसे यह

1- गुनाहों का देवता- पृ0 239

ज्ञात हो गया है कि लाख प्रतिभाशाली लड़कियाँ हों, लेकिन अगर वह किसी को प्यार करेंगी तो उसे अपनी प्रतिभा नहीं देंगी अपना शरीर ही देंगी और यदि वह अस्वीकार कर दिया जाये तो शायद प्रतिहिंसा से तड़प भी उठेंगी । अब तो मुझे ऐसा लगता है कि सेक्स ही प्यार है, प्यार का प्रमुख अंश है।"[1] उधर चंदर की खिज, उपेक्षाओं और पवित्र प्रेम के आदर्श से उसके गिर जाने पर सुधा और भी मृत्यासन्न होने लगती है। चंदर की ओर के अपने प्रेम को अध्यात्म-प्रेम, भक्ति और वैराग्य की पवित्र भावनामय वातावरण में मोड़ देती है। किन्तु इससे भी वह अपनी मानसिक एवं शारीरिक बीमारी से मुक्त न हो सकी । डा० शुक्ला साहब का तार पाकर जब चंदर पुन: दिल्ली पहुंचता है तब वह मृत्यु के क्षणों में चन्दर की यादों में लीन रहती है। उसका एबोर्शन करवा दिया गया था। तनिक होश में आने पर वह चन्दर के पैरों की रज को अपने माथे लगाती है। और अपने तथा चंदर के प्यार के माध्यम के रूप में विनती की स्वीकृति पाकर उस आनेवाले जीवन में जैसे पुन: चन्दर के प्रेम की अमर भावना को अपने सूक्ष्म शरीर में अधिष्ठित करती हुई सुधा इहलौकिक लीला समाप्त कर देती है।

वस्तु-विन्यास :

प्रस्तुत उपन्यास में भावना और वासना के संघर्ष का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से इसके कथानक या वस्तु-रचना का स्वरूप अधिकतर मानसिक क्रिया-व्यापारों के सूक्ष्म-तंतुओं से निर्मित है। भावना के आदर्श एवं वासना के यथार्थपरक वैचारिक कथा-सूत्रों पर आधृत इसके समस्त कथानक को मुख्यतया दो रूपों में देखा जा सकता है। प्रथम सुधा के विवाह पूर्व का रोमांटिक व पवित्रतावादी

1- वही- पृ0 249

प्रेम की भावना को लेकर चलने वाला आधिकारिक कथानक । आधिकारिक कथानक इसलिए कहा गया है क्योंकि इसका नायक चंदर और नायिका सुधा के जीवन की व्यथालोडित मार्मिक स्थितियाँ उक्त शरीर-निरपेक्ष आध्यात्मिक प्रेम भावना का ही परिणाम है जो आदि से अंत तक अर्थात् सुधा की मृत्यु-पर्यन्त बनी रहती है। प्रस्तुत कृति को दुखान्त प्रेम कथा का रूप देने तथा उसके शीर्षक को या नायक चंदर को गुनाहों में भी देवता बनाए रखने का सामर्थ्य तथाकथित प्रमुख कथा को ही है। इसी आधार पर इसे व्यक्तिपरक आदर्शवादी रचना की कोटि में सम्मिलित किया जा सकता है। उक्त तथ्य की पुष्टि श्री कैलाश जोशी जी के शब्दों में इस प्रकार की जा सकती है। 'गुनाहों का देवता' में अन्त तक भी सुधा अपने आदर्शों में जीती है, मृत्यु के पहले तक उसे चन्दर का पूरा ध्यान है। इस प्रकार कुछ चित्र यथार्थपरक होने के उपरान्त भी कुल मिलाकर उपन्यास आदर्शपरक ही है।"[1] अश्क जी का कथन भी इसी तथ्य को घोतित करता है -"गुनाहों का देवता नव वय के युवक के आदर्शवादी स्वप्निल अफलातूनी, अवास्तविक प्रेम का उपन्यास है।"[2] दूसरी वे प्रासंगिक कथाएं हैं जो पम्मी, बिनती, गेसू और बर्टी के प्रेम संदर्भों से जुड़कर शरीर की भूख और आत्मा की प्यास को जीवन जगत की वास्तविक पृष्ठभूमि में एक समान महत्व देती हुई प्रधान कथा के विकास में सहायक हो जाती है। इसका सम्बन्ध जीवन के यथार्थ से जुड़ा हुआ होने के कारण तद्वस्तुगत पूर्वोक्त पात्र भी अधिक व्यावहारिक एवं यथार्थोन्मुख हैं। यथार्थ के स्तर पर पात्रों के चरित्र का मनोवैज्ञानिक चित्रण प्रस्तुत करने के कारण कतिपय आलोचकों ने इस उपन्यास को सामान्य चरित्र प्रधान मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा है। डॉ० सुषमा धवन ने इसकी परिगणना मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में की है।

1- कैलाश जोशी-'धर्मवीर भारती का उपन्यास साहित्य' (सं० 1973-74)पृ० 44

2- अश्क, आलोचना : 4, पृ० 105

इस प्रकार यह उपन्यास लेखक की प्रारम्भिक कृति होने पर भी अपने रचना-सौष्ठव एवं वस्तु-शिल्प की दृष्टि से एक सशक्त एवं सफल कृति सिद्ध हो सकी है।

समस्याएं एवं उद्देश्य :

व्यक्तिगत प्रेम के स्वस्थ विकास में प्राय: परम्परानुमोदित मूल्य बाधक रूप सिद्ध हुए हैं। वर्तमानकालीन ऐसी व्यवस्थाएं व्यक्ति के मार्ग में अनेक प्रकार की उलझनें डालती रही हैं। जिनसे उक्त उलझनों से आक्रान्त व्यक्ति अपनी कुण्ठाओं की अपूर्ति में जीवन भर निराशाओं का ही मुख देखते हुए पंगु और कायर बना रहता है। अंतत: अपने ही 'अहं' एवं 'सेक्स' की विकृतियों से ग्रसित होनेवाले तथाकथित युवक अपने राष्ट्र के लिए न तो एक अच्छे नागरिक ही सिद्ध हो पाते हैं और न तो वे एक स्वस्थ सामाजिक वातावरण ही बना पाते हैं। व्यक्ति की उक्त उलझन प्रद समस्याओं को उठाकर भावना और वासना के द्वन्द्व में फंसे हुए आज के व्यक्ति के मन की गुत्थियों को प्रकाशित करते हुए उसके विकासार्थ उच्च-नैतिक सामाजिक वातावरण को निर्मित करना लेखक का प्रमुख उद्देश्य प्रतीत होता है। इसमें उन्होंने काम-भावना के स्वस्थ रूप को ही प्रश्रय दिया है - "मैं वासनात्मक उच्छृंखलता अथवा अश्लील कामुकता की कोई स्वस्थ समाधान नहीं मानता। किसी भी वर्तमान नैतिकता के विरुद्ध विद्रोह करने का सरस उपाय मेरे मतानुसार यह है कि वर्तमान दोष युक्त नैतिक व्यवस्था के स्थान पर किसी भी उच्चस्तरीय नैतिक व्यवस्था की स्थापना की जाय, जहां मानवता के विकास के लिए अधिकाधिक सुविधाएं प्राप्त हो सकें।"[1] यही कारण है कि आरंभ में जाति-बिरादरी, विवाह-आदि सामाजिक परम्पराओं की प्रशंसा करनेवाले डा0 शुक्ला साहब अंतत: चंदर से कहते हैं- "हम लोग जिन्दगी से दूर रहकर सोचते हैं कि हमारी सामाजिक संस्थाएं

1- दे0 गुनाहों का देवता-(प्र0 सं0) भूमिका-

स्वर्ग है, यह तो जब उनमें धंसो तब उनकी गन्दगी मालूम होती है। ----चंदर तुम कोई और जात का लड़का ढूंढ़ो। मैं बिनती की शादी दूसरी बिरादरी में कर दूंगा।"[1] और यही डा0 शुक्ला साहब सुधा के चुपके से कहने पर बिनती से चंदर के साथ विवाह के लिए राजी भी हो जाते हैं।[2]

आधुनिक प्रेम और विवाह की तथाकथित विषाक्त समस्याओं के स्तर पर डा0 भारती जी ने चंदर, सुधा, गेसू, बिनती, पम्मी और बर्टी जैसे पात्रों की काम और विवाह जनित कुण्ठा-विकृतियों का यथार्थांकन करते हुए यह बतलाना अभीष्ट समझा है कि कामवृत्ति के यथोचित नियंत्रण एवं उसके विकास का सम्यक् हल उपस्थित न होने पर ही कोई भी व्यक्ति देवता या मानव के स्तर से अभिच्युत होकर पशुता के स्तर पर आ सकता है। केवल 'प्लेटोनिक लव' भी मनुष्य को मनुष्य तक रहने बघ नहीं देता, यदि उसमें दमित काम-भावनाओं पर विजय पाने की सक्षमता का अभाव रहा तो वह भी उसे अनुच्च स्थान पर लाकर पटक देता है। अत: कहना न होगा कि सामाजिक नैतिकता व मर्यादा के आड़े आने पर चंदर भी 'प्लेटोनिक प्रेम के उच्चतम आदर्शों पर अधिक समय तक स्थिर न रह सका। सुधा के अभाव में उसका अवचेतन एक ही साथ पम्मी और बिनती जैसी सुकुमार लड़कियों के मांसल -सौंदर्य में डूबकर शांति व तृप्ति का अनुभव करने लगा। इससे चंदर देवत्व से पशुत्व की ओर झुक सा गया। उधर चंदर के अभाव में ससुराल के परिवेश में सुखी व सम्पन्न सुधा भी मानसिक अवस्था के कारण पील-पील कर मर गई। इसी कुण्ठा जनित दुष्परिणामों से व्यक्ति की मुक्ति के लिए प्रारंभ में वासना और शादी को घृणा की दृष्टि से देखनेवाली पम्मी भी अंतत: भारतीय संस्कृति के नैतिक आदर्शों से नियंत्रित सेक्स की वैवाहिक परिणिति का समर्थन करने लगती है।

1- वही- पृ0 274

2- ,, पृ0 347

बर्टी की विदिप्तावस्था का कारण भी काम-अतृप्ति का ही परिणाम है। इस प्रकार अपने पात्रों की विभिन्न समस्याओं के आलोक में डा० भारती जी ने व्यक्ति के स्वस्थ विकासार्थ मानवता सापेक्ष उच्चस्तरीय नैतिक मूल्यों की सामाजिक प्रतिस्थापना का प्रयास किया है।

पात्र एवं चरित्र-विधान :

आज वे ही पात्र अधिकाधिक रूप से पाठक-वर्ग को प्रभावित करने की क्षमता रख सकते हैं जो अधिकतर रूप से रचनाकार के हाथों की कठपुतली न होकर गत्यात्मक हों, काल्पनिक न होकर जीवनानुभूतियों के वास्तविक साँचे से अपने गुण और अवगुणों के साथ, कमियों और विशेषताओं के साथ ढल कर निःसृत हुए हों। उपन्यास जीवन का चित्रण या मानव-चरित्रों का प्रतिबिम्बन करता है। जीवन-चरित्रों की उस यथार्थ-पृष्ठभूमि में रहकर ही श्रेष्ठ साहित्यकार अपने किसी उद्देश्य या जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति ऊपर निर्दिष्ट पात्रों के समुचित प्रयोग द्वारा ही करके साहित्य-जगत में अपनी सफलता का वरण कर सकता है। डा0 भारती जी भी इसी प्रकार के स्वाभाविक एवं जीवन्त पात्रों के निर्माता रहे हैं। उन्होंने स्वतंत्ररूप से अपने पात्रों को विकसित होने दिया है। स्वयं ही उन्होंने अपने पात्रों के प्रयोग के सम्बंध में 'गुनाहों का देवता' की भूमिका में कहा है- "किसी भी पात्र विशेष को मैंने अपने व्यक्तित्व की छाया नहीं दी। प्रत्येक पात्र को अपना निजी व्यक्तित्व है। उनकी अपनी गति है, अपनी दिशा है और इसीलिए यह उपन्यास लिखते समय मुझे अनेक कठिनाइयों के बीच से गुजरना पड़ा। मैं कथानक को कोई अलग दिशा की ओर ले जाना नहीं चाहता था और वे पात्र मेरे पास से कथासूत्र छीनकर अपने मन से अपनी स्वतंत्र दिशा में गतिमान होने लगे।"[1]

1- दे0 गुनाहों का देवता(प्र0 सं0 1949) भूमिका तथा विशेषावलोकन के लिए देखिए- 'ग्यारह सपनों का देश' - पृ0 290-291

उपर्युक्त उद्धरण से डा० भारती जी का पात्रादर्श अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। प्रेमचन्दजी ने भी आज के पात्रों के चरित्र-चित्रण में वास्तविकता और यथार्थता के गुणों का होना आवश्यक माना है - "चरित्र को उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिए यह जरूरी नहीं कि वह निर्दोष हो- महान से महान पुरुषों में भी कुछ न कुछ कमजोरियां होती हैं। चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसकी कमजोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती। बल्कि यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य बना देती है। निर्दोष चरित्र तो देवता हो जायेगा और हम उसे समझ ही न सकेंगे। ऐसे चरित्र का हमारे लिए कोई प्रभाव नहीं पड़ता।"[1] उक्त उद्धरण डा० भारती जी के पात्रों के चरित्र-चित्रण को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी एवं उपयुक्त है। अतः अब यहां पर डा० भारती जी की 'औपन्यासिक कृतियों' के पात्र एवं चरित्र-चित्रण योजना पर विचार किया जा रहा है।

'गुनाहों का देवता' :

इसके मुख्य पात्र चंदर और सुधा हैं। उपन्यासकार ने वासना एवं पवित्र प्रेम की भावना के संघर्षात्मक एवं विरोधाभासात्मक धरातल पर उक्त पात्रों के बाह्याभ्यन्तर चरित्रों की समस्त दुर्बलताओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। अन्य गौण पात्रों में एंग्लोइण्डियन युवती पमीला डिक्रूज (पम्मी), बिनती गेसू, बर्टी, डा० शुक्ला साहब, कैलाश और बुआ आदि पात्र आते हैं। चंदर सुधा के एक मात्र पवित्र-प्रेम का आलम्बन है, जीवन का देवता है। किन्तु इस उपन्यास में वर्णित उसकी सामाजिक कायरता एवं आदर्श प्रेम की अहंवादिता ही जहां एक ओर कैलाश के साथ शादी से सुधा की मृत्यु को निमंत्रित करती है वहीं उसके दमित मन से उत्पन्न मानसिक विकृत भावनाएं उसे अन्य लड़कियों के साथ गुनाह पर गुनाह करने के लिए भी प्रेरित ~~करती~~ कर देती है।

1- 'कुछ विचार' - प्रेमचंद- पृ0 76-77

सुधा वास्तव में त्याग, सेवा, शील और करुणा की साक्षात् आदर्शमयी देवी है। उसका करुणा-स्पन्दित प्रेमिका का उज्ज्वल रूप आदि से अंत तक पाठकों की सहानुभूतिपूर्ण संवेदना को पाते रहता है। सामाजिक नियति की क्रूरता ने उसके जीवन-चक्र को एक ऐसी धुरी पर ला दिया कि जहाँ उसके हृदय की समस्त चेतना अपने गन्तव्य को पथविहीन पग-दण्डियों में कहीं खो जाते देख दिन्दिन ठण्डी पड़कर अंततः चिरशांति की गोद में पुनः जन्म की स्वप्निल प्रात्याशा में रवि की अंतिम किरण सी क्षितिज को करुणारुण करती हुई विलीन हो जाती है।

ऊपर वर्णित दो प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्र भी बड़े प्रभावपूर्ण हैं। सुधा पवित्र प्रेम की आदर्श मूर्ति है तो पम्मी वासना के यथार्थ रूप की सजीव ~~प्रति~~ प्रतिमा है। डा० भारती जी ने मांसल सौंदर्य जन्य प्रेम को वासना की हीन या पापमयी दृष्टि से नहीं देखा है। 'ठण्डा लोहा' एवं 'कनुप्रिया' में वर्णित उद्दाम रूपासक्ति परक कविताओं में उक्त तथ्य की प्रतीति हो जाती है। यहाँ तथाकथित सत्य की पुष्टि के लिए ही पम्मी के वासनापरक चरित्र का निर्माण किया गया है। पति के होते हुए भी नारी के भीतर एक प्रेमी की प्यास छिपी रहती है। बर्टी के इस विचार की प्रतीति भी पम्मी के उन्मुक्त एवं स्वच्छंद चरित्र द्वारा ही होती है। वह वासना को व्यावहारिक किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से महत्व देती हुई जीवन में स्त्री और पुरुष के शारीरिक समर्पण को ही प्रेम की पूर्णता मानती है। प्रारंभ में तो वह चंदर के साथ प्रेम का नाटक खेलती है किन्तु अन्ततोगत्वा स्पष्ट कह देती है - 'कपूर, सैक्स इतना बुरा नहीं जितना मैं समझती थी।'[1] ~~इसी~~ यही कारण है कि सुधा के विवाहोपरान्त वह आत्म-रति-पीड़ित मनवाले चन्दर को अपने रूप और यौवन के प्रति

1- गुनाहों का देवता- पृ० 265

आकृष्ट करने में सफलता पालेती है। किन्तु उपन्यासकार ने उसके चरित्र को अश्लिलता या अनैतिकता कीराह तक गुजरने नहीं दिया है। इस स्थिति के आने के पूर्व ही जीवन में सैक्स कीप्रत्यक्षानुभूति कराकर वह भारतीय संस्कृति के नैतिक आदर्शों के अनुरूप चंदर से दूर होकर अपने पति के पास पुन: लौट जाती है। अत: कहा जा सकता है कि अवचेतन में पड़ी विकृति जनित मानसिक गुत्थियों कोसु सुलझाकर चितस्थ विकृतियों को दूर करने के लिए ही पम्मी के व्यक्तित्व को यथार्थ की रेखाओं से उभारा गया है।

बिनती सुधा और पम्मी के चरित्रों के बीच की वह कड़ी है जहां पवित्र प्रेम की उदात्त भावना भी है और वासना के महत्व की मौन स्वीकृति भी। यही कारण हैकि बाहर से वासना को हीन दृष्टि से देखनेवाली बिनती चन्दर को पम्मी के पास जाने से रोककर उसकीसमीपता के लिए तरसती रहती है। चन्दर द्वारा उसके माथे पर रखे गये होंठों को हटा नहीं पाती, उसके द्वारा अपने अंग-स्पर्श में अपमान या अपवित्र भावना सी कोई दृष्टि नहीं रखती। साथ ही चन्दर के हाथों को अपने हाथ में लेकर उसकी अंगुलियां चिटकाती रहती है। बर्टी का पात्र यथार्थवादी है। वह जीवन के यथार्थानुभवों का मुक्त भोगी जीव है। साथ ही नारी मनोविज्ञान की नाडी को वह भलीभांति जानता भी है। जीवन की विषम परिस्थितियों ने उसे असाधारण या विचित्र व्यक्तित्व प्रदान किया है। उसका मत है कि 'प्रत्येक लड़की पति खोजती है और प्रत्येक पत्नी प्रेमी।' अत: सैक्स नारी जीवन का अंतिम सत्य है।' वह अपने जीवन में उक्त तथ्यों की प्रतीति स्वयं कर चुका है। उसकी इन बातों से चन्दर अत्यधिक प्रभावित हो जाता है। वास्तव में कच्चे, अपरिपक्व और भावुक व्यक्तित्व वाले चन्दर (चन्द्र कपूर) के चरित्र को यथार्थ की आंच में तपाकर पक्का करने के लिये ही बर्टी के चरित्र की सृष्टि की गई है। गेसू का चरित्र भी सुधा सा भावुक और एकनिष्ठ प्रेमादर्शावलम्बित है। कुछ अन्य अतिरिक्त पात्रों में बुआ जी (डा0 शुक्ला साहब की बहन), और दुबे जी जैसे पात्रों का निर्माण किया गया है। इनकी उपस्थिति से कथानक में हास्य एवं व्यंग्य के वातावरण की सरस सृष्टि हो पाई है।

ऊपर वर्णित पात्रों में भाव या विचार की दृष्टि से चन्द्र कपूर(चन्दर) सुधा और गेसू शुद्ध या रोमाण्टिक प्रेम-भावना से जुड़नेवाले भावुकतावादी पात्र हैं, जबकि पम्मी, बिनती, बर्टी आदि पात्र भावुकता के स्तर से ऊपर उठकर जीवन-जगत की वास्तविकताओं को गहराई से समझनेवाले अत्यन्त व्यवहार कुशल एवं यथार्थवादी पात्र हैं। उपर्युक्त शिक्षित एवं निम्न-मध्यवर्गीय पात्रों की कुण्ठाओं एवं निराशामूलक स्थितियों का व्यक्ति के परिवेश में मनोवैज्ञानिक एवं काव्यात्मक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'गुनाहों का देवता' में पात्रों का सटीक विनियोग होने के कारण अनावश्यक पात्रों की भरमार नहीं है। सभी पात्र मुख्य कथा की संगति एवं विकास में अपना समुचित योगदान प्रस्तुत करते हुए दो विरोधी भाव स्तरों पर आधारित कथा-सूत्रों को तारतम्यहीन होने से बचा लेते हैं। अन्यान्य पात्रों के चरित्रोद्घाटन के लिये ही परस्पर विरोधी व्यक्तित्व वाले पात्रों का प्रयोग किया गया है। उदाहरणतया चन्दर और बर्टी, सुधा और पम्मी ऐसे ही पात्र हैं। प्राय: इन्हीं पात्रों के माध्यम से डा0 भारती जी ने अपने जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति की है। इसमें पात्रों का नाटकीय प्रयोग ही अधिकतर रूप से हो पाया है। कहीं-कहीं लेखक स्वयं अपने पात्रों के सम्बंध में उपस्थित हुआ है। अपने पात्रों की उनके विकास की दिशा में स्वतंत्र रूप से गतिशील होने देना वस्तुत: रचनात्मक प्रक्रिया की दृष्टि से लेखक के लिए 'दुस्साध्य धारा' के समान है। इसी सम्बंध में डा0 भारती जी ने कहा है - 'केवल दो ही स्थानों पर वे (पात्र) मेरे साथ सहमत हैं। एक तो वर्तमान सामयिक व्यवस्था के प्रति असंतोष और दूसरा उनके लिए कोई उच्चस्तरीय नैतिकता एवं पवित्रता की सतत और प्रामाणिक शोध।'[1]

1- वही- (प0 सं0 1949)-भूमिका-

चरित्र-चित्रण प्रणाली :

डा० भारती जी ने 'गुनाहों का देवता' के पात्रों के चरित्रांकन के लिए प्राय: जिन शैलियों या विधियों का उपयोग किया है उन्हें निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है।

(1) संवादात्मक नाटकीय शैली : - इस प्रकार की शैली में पात्रों के बीच में परस्पर संवाद करवा कर उनके चरित्र को उद्घाटित किया जाता है। इस प्रकार के संवादों का बहुलतापूर्वक उपयोग किया गया है। ऐसे संवाद पात्र एवं प्रसंगानुकूल हैं। इनमें हास्य एवं व्यंग्य की प्रभावोत्पाद चुटकियों के साथ ही पात्रों की बौद्धिक क्षमता, मानसिक परिस्थितियों एवं उनके जीवन-दर्शन की सरस अभिव्यंजना हो सकी है। इस उपन्यास में चन्दर-बिसारिया, चन्दर और गेसू, पम्मी और चन्दर, बर्टी तथा चन्दर, आदि के बीच व्यवहृत संवाद इसी प्रकार के हैं। उदाहरणार्थ- सुधा और चन्दर का निम्नांकित संवाद दृष्टव्य है -

'क्यों पीते क्यों नहीं ?' सुधा ने अपना प्याला रख दिया।

'पियें क्या ? कहीं चाय भी हो ?'

'तो और क्या खालिस चाय पीजिएगा ? दिमागी काम करनेवालों को ऐसी ही चाय पीनी चाहिए ?

'तो अब मुझे सोचना पड़ेगा कि मैं चाय छोड़ूं या रिसर्च। न ऐसी चाय मुझे पसन्द, न ऐसा दिमागी काम।'

'लो आपको विश्वास नहीं होता। मेरी क्लासफलो है गेसू काज़मी, सबसे तेज लड़की है, उसकी अम्मी उसे दूध में चाय उबाल कर देती हैं।'

क्या नाम है तुम्हारी सखी का ?'

'गेसू।'

'बड़ा अच्छा नाम है।'

"और क्या मेरी सबसे घनिष्ट मित्र है और उतनी ही अच्छी है जितना अच्छा नाम।"

'जरूर-जरूर' मुंह बिचकाते हुए चन्दर ने कहा - "और उतनी काली होगी, जितने काले गेसू।"

"धत्' शरम नहीं आती किसी लड़की के लिए ऐसा कहते हुए।"[1]

(2)पात्रों को कार्य-क्षेत्र में प्रवृत्त कराकर चरित्र चित्रण करने की प्रणाली है। इस प्रकार का चरित्रांकन इस उपन्यास में प्राय: यत्र-तत्र मिल ही जायेगा। उदाहरणतया बर्टी का बाग में गुलाब के फूलों की रखवाली करते रहना, उसके द्वारा अपने प्यारे तोते को गोली से मार डालना जैसे प्रसंगों से बर्टी के चित्र की विक्षिप्तावस्था को उद्घाटित किया गया है। दिल्ली में सुधा को अकेली पाकर चन्दर द्वारा वासना का अभिनय किया जाना भी ऐसा ही प्रसंग है।

(3) स्वयं लेखक द्वारा अपने पात्रों के सम्बंध में कुछ प्रकाश डालना : इस प्रकार की शैली को चरित्र चित्रण की प्रत्यक्ष-शैली कहा जाता है। डा0 भारती जी ने उपन्यास के प्रारंभ में ही चंदर की वेशभूषा, स्वभाव, गुण एवं रुचि आदि बातों का चित्र बड़े आकर्षक ढंग से आलेखित किया है। लेखक ने बड़ी कुशलता से चंदर के रामाण्टिक होने का परिचय अपने पाठकों को दे दिया है। इसी प्रकार पृष्ठ 18 से 22 तक के दीर्घ फलक पर सुधा का भी परिचय दिया गया है।

(4) मनोविश्लेषणपरक शैली द्वारा चरित्र-चित्रण : इस प्रकार की शैली को अंतरंग शैली भी कहा जाता है। मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण प्रधान उपन्यासों में इसका बहुलता से उपयोग किया जाता है। डा0 भारती जी ने अपने पात्रों की मानसिक

1- वही-(बारहवां संस्करण 1973) पृ0 22

अवस्था के अनुरूप इस प्रकार की शैली भी प्राय: अपना रूप बदल लेती है। जिसे मनोवैज्ञानिकों ने अन्तर्विवाद (इन्टीरियर मोनोलाग), स्वप्न-विश्लेषण(ड्रीम-ऐनोलिसिस) या मुक्त-आसंग (फ्री ऐसोसिएसन) तथा शब्द-सहस्मृति परीक्षण आदि के नामों से संज्ञायित किया है। उक्त शैलियां वस्तुत: मनोविश्लेषण (साइको-एनोलिसिस) के ही विभिन्न रूप हैं। डा0 भारती जी ने ऊपर आदिष्ट मनोविश्लेषण परक चरित्र चित्रण की प्रणाली का सर्वाधिक रूप से प्रयोग किया है। कहीं स्वयं अपने द्वारा, कहीं पात्रों के वार्तालाप द्वारा, तो कहीं स्वयं अपने पात्रों के कार्य-कलापों के द्वारा। कभी-कभी प्रतीकात्मक भाषा शैली प्रधान प्राकृतिक वातावरण की नियोजना से भी अपने पात्रों का बड़ा ही मार्मिक व प्रभावोत्पादक चरित्रांकन किया है। यहां इन सबके उदाहरण न देकर केवल कुछ के ही उदाहरण दिये जा रहे हैं। इस जन्म में प्रेम में असफल होनेवाली सुधा की मृत्यु: प्राय: स्थिति को उसी के शब्दों में प्रतीकात्मकता के साथ उजागर किया गया है "मेरे छोटे भतीजे नीलू ने पहाड़ी चूहे पाले हैं। उनके पिंजड़े के अन्दर एक पहिया लगा है और ऊपर घण्टियां लगी हैं। अगर कोई अभागा चूहा उस चक्र में उलझ जाता है तो ज्यों-ज्यों छूटने के लिए वह पैर चलाता है त्यों-त्यों चक्र घूमने लगता है, घण्टियां बजने लगती हैं। नीलू बहुत खुश होता है लेकिन चूहा थककर बेदम होकर नीचे गिर पड़ता है। कुछ ऐसे ही चक्र में मैं फंस गई हूं चन्दर। सन्तोष सिर्फ इतना है कि घण्टियां बजती हैं तो शायद तुम उन्हें पूजा के मंदिर की घण्टियां समझते होगे।"[1] चन्दर की चरित्रहीनता पर स्वयं उसके प्रतिबिम्ब ने शीशे द्वारा किये गए आक्षेपों व प्रहारों में अन्तर्विवाद प्रधान मनोविश्लेषण की आलोचना प्रधान विधि को देखा जा सकता है। "अपनी छवि निरख रहा है? पापी। पतित!"----चन्दर तड़प उठा, पागल सा हो गया। कंधा पकड़ कर बोला- "कौन है पापी। मैं हूं पापी। मैं हूं पतित। गलत। मुझे तुम

1- वही-(बा0 सं0) पृ0 260-261

Smt. HANSA MEHTA LIBRARY
THE M. S. UNIVERSITY OF BARODA

नहीं समझते । मैं चिर पवित्र हूं । मुझे कोई नहीं जानता । कोई नहीं जानता। हां, हां ! " प्रतिबिम्ब हंसा- " मैं तुम्हारी नस-नस जानता हूं । तुम वही हो न जिसने आज से डेढ़ साल पहले सपना देखा सुधा के हाथ से लेकर अमृत बांटने का, दुनिया को नया सन्देश देकर पैगम्बर बनने का नया संदेश । खूब नया सन्देश दिया मसीहा । पम्मी-----बिनती----सुधा-- कुछ और छोकड़ियां बटोर लें । चरित्रहीन । "----गालियों से मेरा कोई समझौता नहीं है । " "अच्छा, समझो । देखो, मैं यह नहीं कहता कि तुम ईमानदार नहीं हो, तुम शक्तिशाली नहीं हो । लेकिन तुम अन्तर्मुखी रहे, घोर व्यक्तिवादी रहे, अहंकारग्रस्त रहे । अपने मन की विकृतियों को भी तुमने अपनी ताकत समझने की कोशिश की । "[1] चन्दर द्वारा देखा गया कपूर के पहाड पर कंकाल काय हाथ में खोपड़ी लिए प्रेत का भयंकर स्वप्न कि जिसमें सुधा मशालधारी शैतान की गोद में बैठी हुई थी के स्वप्नांकित दृश्य द्वारा चरित्र चित्रण की स्वप्न-शैली का प्रयोग किया गया है । इसमें स्वप्न का विश्लेषण न होकर स्वप्न-संघटनपरक प्रतीकों का जुटाव किया गया है ।[2]

कथोपकथन एवं भाषा-शैली :

प्राय: कथोपकथन का उपयोग निम्नांकित उद्देश्यों के लिए किया जाता है यथा(1) कथा-वस्तु के विकास के लिए(2) पात्रों के चरित्रांकन में सहायता के लिए(3) तथा कृतिकार के मन्तव्यों को पात्रों के माध्यम से प्रगट करने के लिए ।

1- वही- (बा0 सं0) पृ0 314-315

2- वही- (,,) दे0 पृ0 233

'गुनाहों का देवता' में संवादों या कथोपकथनों का उपयोग बहुलता से किया गया है। कथोपकथन विभिन्न घटनाओं एवं पात्रों के अनुरूप होने के कारण कथा-वस्तु को स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक गति प्रदान करने में अत्यंत सहायक हो पाए हैं। जहां घटना स्थल पर अनेक पात्रों का जमघट लगायाजाता है वहां कथा में बिखराव एवं बोझिल या दुरुह तत्वों की अधिक संभावना होने के कारण उसके रोचकता, एकरूपता एवं संक्षिप्तता जैसे गुणों की प्रतीति में बाधा उत्पन्न हो जाती है। डा० भारती जी के संवाद घटना एवं पात्रों की अस्पष्टता और जटिलता से प्राय: मुक्त ही रहे हैं। उन्होंने अपने पाठकों को विभिन्न परिस्थिति-गत प्रतिक्रियाओं तथा भावों का प्रत्यक्ष बोध कराने के लिए संवाद-कला के औचित्य का सर्वथा विवेक रखा है। सुधा के विवाह के पूर्व चन्दर और सुधा के बीच व्यहृत संवादों में परस्पर के विशुद्ध प्रेम-सम्बंधों का हास्य-व्यंग्यात्मक रूप उपलब्ध होता है। ठीक इसके विपरीत सुधा के विवाहोपरान्त उन दोनों के संवादों में जीवन की निराशा, कुण्ठा, विवशता और असफलता जैसी करुण स्थितियों एवं भावों का सफल चित्रण हो सका है। उदाहरण के लिए सुधा के विवाह के पूर्व चंदर और सुधा का संवाद दृष्टव्य है - एक बार सुधा ने बहुत अच्छी वायल कानपुर से मंगवायी। इस पर चंदर ने कहा-'लाओ, ये तो बहुत अच्छी है इस पर हम किनारे की डिजाइन बना दें।" और उसके बाद उसने उसमें तमाम पान जैसा जाने क्या बना दिया और जब सुधा ने पूछा-'ये क्या है?' तो बोला-'लंका का नक्शा है।' तब सुधा बिगड़ी तो बोला-' लड़कियों के हृदय में रावण से लेकर मेघनाद तक करोड़ों राक्षसों का वास होता है, इसीलिए उनकी पोशाक में लंका का नक्शा सबसे सुशोभित होता है।"[1] उक्त कथोपकथन में हास्य-व्यंग्यात्मक शैली को देखा जा सकता है।

1- गुनाहों का देवता- पृ0 83

चरित्रांकन की दृष्टि से आयोजित संवादों पर विचार किया जा चुका है। ऐसे संवाद पात्रानुकूल योग्यता के साथ ही उनकी मन:स्थितियों, स्वभावों, तथा चरित्र-निरूपक विभिन्न गुणों का सजीव व सरस चित्र पाठकों के हृदय-पटल पर अंकित कर देते हैं। आज के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कथोपकथन का एक अन्य रूप अन्तर्विवाद(इन्टीरियर मानोलोग) की शैली में भी उपलब्ध होता है। इससे पात्रों के मन में घटित वस्तु को पाठक अपनी खुली आंखों से देख सकता है। इस उपन्यास में सुधा एवं चन्दर के मन में उठे हुए अन्तर्द्वन्द्वों के समय पर उक्त अन्तर्विवाद की शैली का खुलकर प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार चन्दर द्वारा उसके सम्पर्क में आयी हुई तीन नारियों के जीवन की बरबादी का ज्ञान उसे कराने के लिए शीशे में पडे उसके प्रतिबिंब से संवाद करवाया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में उक्त संवाद पृष्ठ 314 से लेकर पृष्ठ 319 तक चलता रहता है। इससे पाठक चन्दर के अचेतन की स्पष्ट झांकी कर लेता है।

युगीन समस्याओं पर आधारित लेखक के मन्तव्यों को भी विभिन्न पात्रों के संवादों द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। इनसे लेखक की जीवन-दृष्टि का सहज रूप में परिचय मिल जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में पम्मी और चन्दर, डा0 शुक्ला साहब और चन्दर तथा शंकर बाबू और डा0 शुक्ला साहब के बीच प्रयुक्त संवादों के द्वारा सेक्स और प्रेम, जातीय एवं अन्तर्जातीय विवाह, तथा सामाजिक कुप्रथाओं एवं अंध-परम्परा की कटुता पर उपन्यासकार ने पात्रों के माध्यम से अपने विचारों एवं मन्तव्यों को अभिव्यक्त किया है।उदाहरण के रूप में डा0 शुक्ला साहब और शंकर बाबू के बीच का संवाद प्रस्तुतव्य है - "हां, एक बात है।" शंकर बाबू बोले- "ब्याह हम लोग महीने भर के अन्दर ही करेंगे। आपकी सब बात हमने मानी, यह बात आपको माननी होगी।" "इतनी जल्दी।" डाक्टर शुक्ला चौंक उठे, "यह असम्भव है शंकर बाबू। मैं अकेला हूं आप जानते हैं।

'नहीं, आपको कोई कष्ट न होगा' शंकर बाबू बहुत मीठे स्वर में बोले- "हम लोग रीति-रसम के तो कायल हैं नहीं। आप जितना चाहें रीति-रसम अपने मन से कर लें। हम लोग तो सिर्फ छह-सात आदमियों के साथ आवेंगे। सुबह आवेंगे, अपने बंगले में एक कमरा खाली करा दीजियेगा। शाम को आवानी और विवाह कर दें। दूसरे दिन दस बजे हम लोग चले जायेंगे।"

'यह नहीं होगा' डाक्टर साहब बोले, "हमारी तो अकेली लड़की है और हमारे भी तो कुछ हौसले हैं। देखिए, मैं आपको समझा दूं, कैलास शादियों में तड़क-भड़क के सख्त खिलाफ है। पहले तो वह इसीलिए जाति में विवाह नहीं करना चाहता था, लेकिन जब मैंने उसे भरोसा दिलाया कि बहुत सादा विवाह होगा तभी वह राजी हुआ है।"[1]

भाषा-शैली-शिल्प :

भाषा के साथ शैली का घनिष्ट सम्बन्ध होने से प्राय: दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। साहित्य में भाषा कृतिगत विषय-वस्तु, विचार, पात्र एवं रचनाकार के व्यक्तित्व एवं उद्देश्य के अनुरूप अपना स्वरूप भी बदलती रहती है। शैली का सम्बन्ध भी कृतिकार के व्यक्तित्व के साथ ही साथ कृति की विषय-वस्तु एवं उसकी अभिव्यक्ति से जुड़ा रहता है।

डा0 भारती जी मूलत: रूमानी प्रकृति के साहित्यकार हैं। 'शैली ही व्यक्तित्व है' वाले कथन के आधार पर प्रस्तुत उपन्यास की भाषा-शैली के संदर्भ में कैलाश जोशी जी के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है - 'गुनाहों का देवता' की भाषा रोचक और रमणीय है क्योंकि 'गुनाहों का देवता' की भूमि

1- वही- पृ0 182-183

भी भावात्मक है जहां आहें सर्द और रंगीजर्द में वातावरण ढला हुआ है। वहां भारती ने वैसा ही भाषा का प्रयोग किया है जो रूमानी, चित्रात्मकता, इन्द्र-धनुषी और फूलों से सजी हुई है। इसकी भाषा में भावानुकूलता, भाषा की समाहार शक्ति, कल्पना-चातुर्य और कहें कि नवनवोन्मेष-शालिनी प्रतिभा है।"[1] उपन्यास के प्रारंभ में ही लेखक ने उक्त रूमानी शैली में प्रभात का सुरम्य चित्रण अंकित किया है - "वसन्त के नये नये मौसमी फूलों को रंग से मुकाबला करनेवाली हलकी सुनहरी, बाल-सूर्य की अंगुलियाँ सुबह की राजकुमारी के गुलाबी वक्ष पर बिखरे हुए भौंराले गेसुओं को धीरे-धीरे हटाती जाती है और क्षितिज पर सुनहली तरुणाईंं बिखर पड़ती है।"[2] सांकेतिक या प्रतीकात्मक दृष्टि से भी प्रस्तुत उद्धरण रोमांस प्रिय कैशोर्य कल्पनाशील व्यक्ति की स्वच्छंद प्रकृति का द्योतक है। इसी प्रकार रोमाण्टिक प्रेम के पवित्रादर्शों पर टिकनेवाले चंदर, सुधा और गेसू आदि भावुकतावादी पात्रों की भाषा-शैली भी रूमानी वातावरण में ढली हुई है। उपन्यास में प्रयुक्त सुधा के पत्रों की भाषा को निर्दिष्ट करते हुए चंदर ने भी समर्थित किया कि - "तुम्हारी भाषा वहां जाकर बहुत निखर गयी है। मैं तो समझता हूँ कि अगर खत कहीं छपा दिया जाये तो लोग इसे किसी रोमाण्टिक उपन्यास का अंश समझेंगे क्योंकि उपन्यासों के ही पात्र ऐसे खत लिखते हैं, वास्तविक जीवन के नहीं।"[3]

डा० भारती जी ने इस उपन्यास में विभिन्न पात्रों की मन:स्थितियों के उद्घाटनार्थ मनोविश्लेषण प्रधान भाषा-शैली का भी प्रयोग किया है जिसके अन्तर्गत स्वप्न-शैली, स्मृति-शैली या पूर्व-दीप्तिपरक शैलियों को भी देखा जा सकता है। विशेषकर विभिन्न पात्रों के संवादों की भाषा ऐसी ही है। चंदर

1- कैलाश जोशी 'धर्मवीर भारती का उपन्यास साहित्य' (1973-74)पृ0 47

2- गुनाहों का देवता-(बा0 सं0) पृ0 10

3- वही- पृ0 261

द्वारा देखे गये दो स्वप्नों की भाषा-शैली में इसका अधिकतर निखरा हुआ रूप मिलता है।[1] इस उपन्यास में आलंकारिक, चित्रात्मक या काव्यमय भाषा-शैली का खुलकर प्रयोग किया गया है। इसके कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

चित्रात्मक भाषा-शैली :

"बड़ी खुशनुमा दोपहरी थी। खुशबू से लदे हल्के-हल्के झोंके गेसू की ओढ़नी और गरारे की सिलवटों से आंखमिचौनी खेल रहे थे। आसमान में कुछ हल्के रूपहले बादल उड़ रहे थे और जमीन पर बादलों की सांवली छायाएं दौड़ रही थीं।"[2]

आलंकारिक भाषा-शैली :

"हल्की बादामी रंग की इकलाई की लहराती हुई धोती, नारंगी और काली तिरछी धारियों का कलफ किया चुस्त ब्लाउज और एक कन्धे पर उभरा हुआ उसका (सुधा का) पफ ऐसा लग रहा था जैसे कि बांह पर कोई रंगीन तितली आ कर बैठ गयी हो और उसका सिर्फ एक पंख उठा हो।"[3]

विभिन्न भावात्मक प्रसंगों के अनुसार इसकी भाषा-शैली भी प्राय: बदलती रही है। विवाह के प्रसंग पर हास्य-व्यंग्यात्मक भाषा-शैली का जहां प्रयोग हो पाया है वहीं विदा के करुण प्रसंग पर भाषा भी रसानुकूल हो गई है।

1- वही- पृ0 123 और 233

2- वही- पृ0 47

3- वही- पृ0 53

'चन्दर की समझ में नहीं आया वह क्या करे। आंसू उसके सूख चुके थे। वह रो नहीं सकता था। उसके मन पर कहीं कोई पत्थर रखा था जो आंसुओं की बूंदों को बनने के साथ ही सोख लेता था।"[1]

'गुनाहों का देवता' में ग्रामीण बोली एवं अंग्रेजी शब्दों तथा वाक्यों का भी प्रयोग हुआ है। बिनती की बुआ की भाषा ग्रामीण बोली से युक्त है- यथा- 'अबहिन तक बिनती का पता नै, और उ तुरकन-मलेच्छन के हियां कुछ खा-पी लिहिस तो फिर हमरे हियां गुजारा वह नहि ना ओका।"[2] बर्टी, पम्मी आदि एंग्लोइण्डियन पात्रों की भाषा प्राय: अंग्रेजी लिहाज में ढली हुई है। कहीं-कहीं तो पूरा वाक्य ही अंग्रेजी में मिलता है। यथा- 'हीयर यू आर, आई हैव काट रेड हैण्डेड टूडे।"[3] इस उपन्यास में पत्रात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है।[4]

डा0 भारती जी ने अपनी कलात्मक प्रतिभा के ताने-बानों से बुनकर नई अभिव्यंजना के शिल्प का निर्माण भी किया है। इस दृष्टि से अभिव्यंजना-शिल्प के नये उपकरणों यथा नये अप्रस्तुतों, नये विशेषणों, प्रतीक-शब्दों एवं नूतन विचार धारा से पूरित सुंदर सुक्तियों को भी देखा जा सकता है। प्रस्तुत चांदनी, तन, दूध की चाय, भागना, और शरीर के लिए क्रमश: अप्रस्तुत हैं कफन, मांग दीपशिखा, चाय की पत्ती का हलुआ, छलकती हुई चाय, और टैंक। नये विशेषणों में क्वांरी सांसें, सीपियां पलकें, केसरी श्वासें जैसे प्रयोग उदाहरणीय हैं। सूक्ति-वाक्यों का प्रयोग भी लेखक की टकशाली भाषा के चिन्तन-चूडान्त रूप का सुन्दर निदर्शन है। अत: कुछ सूक्ति-वाक्य ध्यातव्य हैं -(1) 'बुद्धि और शरीर

1- वही- पृ0 194

2- वही- पृ0 103

3- वही- पृ0 28

4- दे0 पृ0 211, 247, तथा 360

बस यही दो आदमी के मूल तत्व हैं। हृदय तो दोनों के अन्त:संघर्ष की उलझन का नाम है।"[1] (2) सम्बन्धों की घनिष्टता को नापने का नारी के पास एक ही मापदण्ड है, चुम्बन का तीखापन।"[2] (3) औरत अपने प्रति आनेवाले प्यार और आकर्षण को समझने में चाहे एक बार भूल कर जाये, लेकिन वह अपने प्रति आनेवाली उदासी और उपेक्षा को पहचानने में कभी भूल नहीं करती।"[3] उपर्युक्त सूक्तियाँ वस्तुत: लेखक के दार्शनिक व मनोवैज्ञानिक चिन्तनावलोचन की सुंदर अभिव्यक्ति का प्रमाण है।

अत: ऊपर विवेचित तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'गुनाहों का देवता' अपने कथ्य के अनुरूप भी भाषा एवं शैली शिल्प की दृष्टि से भी एक सफल कृति है। श्री प्रेमप्रकाश गौतम के शब्दों में कहा जा सकता है -

'गुनाहों का देवता' में अनुभूति की शक्ति और सहज अभिव्यक्ति है और उसके रचनाकार को कथा कहने की, उपन्यास शिल्प की पकड़ है और इसीलिए यह उपन्यास काफी रोचक और प्रभावपूर्ण है।"[4]

'सूरज का सातवां घोड़ा' कथा-सार :

सन् 1952 में निष्कर्षवादी प्रेम-कथाओं के आकलन के रूप में लिखा गया यह एक लघु उपन्यास है। इसके उपोद्घात में घटनाओं के दृष्टा एवं वक्ता माणिक मुल्ला का परिचय दिया गया है। वे मुहल्ले के प्रसिद्ध व्यक्ति व श्रेष्ठ कथाकार थे। मुहल्ले के लड़के उन्हें गुरुवत् मानते थे। घर में अकेले रहने के कारण वहीं दुपहर

1- वही- पृ0 266

2- वही- पृ0 301

3- वही- पृ0 300

4- सं0 लक्ष्मण गौतम 'धर्मवीर भारती' - पृ0 92

में लड़कों का अड्डा जमता था जिनके लिए `पहली-दोपहर` की बैठक में माणिक ने जो कहानी सुनाई उसका शीर्षक है : `नमक की अदायगी`- अर्थात् जमुना का नमक माणिक ने कैसे अदा किया। इसमें बीस वर्षीया जमुना का पन्द्रह वर्ष के माणिक को नमकीनपुए खिलाकर अपने पास बुलाने तथा बातचीत करने का वर्णन है। `दूसरी दोपहर` की कहानी का शीर्षक है - `घोड़े की नाल` अर्थात् किस प्रकार घोड़े की नाल सौभाग्य का लक्षण सिद्ध हुई। इसमें एक वृद्ध किन्तुसम्पन्न पति से जमुना के अनमेल विवाह, उसकी ऊपरी पतिनिष्ठा, पुत्र-प्राप्ति के लिए उसकी धार्मिक अन्ध-श्रद्धा तथा रामधन तांगे वाले के साथ गुप्त सम्बंध , पुत्र-प्राप्ति व पति की मृत्यु के बाद रामधन को अपनी कोठी में रहने देने का वर्णन है। `तीसरी दोपहर` में कही गई कहानी का शीर्षक माणिक मुल्ला ने नहीं बताया। इसमें दहेज प्रथा के अभिशाप रूप प्रिय साथी जमुना और तन्ना के बीच विवाह के न होने की दु:खद कहानी के साथ ही तन्ना के पिता महेसर दलाल कीपत्नी के मरने पर उसके द्वारा रखैल को रखना, रखैल के कठोरतम नियंत्रण में तन्ना का भूखे रहकर मार खाते रहना, उसके इन्टर पास लड़की लीला से विवाह का होना, आर0 एस0 एस0 के एक साधारण क्लर्क के रूप में गृहस्थी का भार ढोते हुए अंतत: ट्रेन से अचानक गिरकर मर जाने तक की घटनाओं का चित्रण किया गया है। `चौथी दोपहर` की कहानी का शीर्षक है `मालवा की युवरानी देवसेना की कहानी। इसमें माणिक और लीला के इन्द्रधनुषी रूमानी प्रेम एवं तन्ना के साथ लीला के विवाह के कारणों की चर्चा है। `पांचवी दोपहर` की कहानी का शीर्षक `काले बेंत का चाकू` है। इसमें पच्छिया छाप साबुन के मालिक चमन ठाकुर की पोषिता कन्या सत्ती के साथ माणिक की घनिष्ठ मित्रता का वर्णन है। सत्ती माणिक से अत्यधिक प्यार करती थी, चमन ठाकुर पर चांदी का जूता फटकार कर महेसर दलाल ने सत्ती को अपनी काम-बुभुक्षा का शिकार बनाना चाहा जिससे बचकर एक रात को सत्ती माणिक के घर चली आई किन्तु मर्यादा-भीरु माणिक द्वारा भाई को सूचित करने पर उसे चमन ठाकुर के हवाले कर दी

गई । लोगों का कहना था कि चमन ठाकुर और महेसर दलाल ने मिलकर एक रात को उसका गला घोंट दिया ।

'छठी दोपहर' में यही कहानी 'क्रमागत' के रूप में आगे चलती है । सत्ती की मृत्यु की खबर से माणिक अत्यन्त व्यथित हुए । उनका न केवल स्वास्थ्य ही गिर गया ~~बरन~~- वरन् वे स्वभाव में असामाजिक, उच्छृंखल व आत्मघाती भी हो गये । किन्तु एक दिन चाय घर से निकलने पर देखा कि एक लड़की की गाड़ी में चमन ठाकुर बैठा था और सत्ती गोद में एक भिनकता बच्चा लिए गाड़ी खींचते चली आ रही थी । माणिक को देखते ही खून की प्यासी सत्ती ने चाकू की तलाश में कमर की ओर हाथ बढ़ाया । किन्तु उसके न मिलने पर वह आगे बढ़ गई । सत्ती को जीवित पाकर माणिक के हृदय का शोक शांत हुआ और तन्ना के रिक्त स्थान पर आर० एम० एस० में नौकरी ले ली ।

'सातवीं दोपहर' की कहानी का शीर्षक है 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' अर्थात् वह जो सपने भेजता है । इसके अन्तर्गत माणिक ने सूरज के सात घोड़ों का आशय स्पष्ट किया है ।

कहानियों के उपरान्त आनेवाले 'अनध्यायों' में लेखक ने बड़ी कुशलता के साथ कथित कहानियों की प्रतिक्रियाओं के सन्दर्भ में वर्तमान कालीन समस्याओं का अंकन किया है ।

वस्तु गठन एवं कथा -शिल्प :

प्रस्तुत लघु उपन्यास जमुना, लिली और ~~ब~~ सत्ती के साथ माणिक मुल्ला के जीवन में घटित असफल प्रेम-कहानियों का आकलन है । इसमें माणिक मुल्ला द्वारा छह दोपहरों में कही गई छह प्रेम कथाओं को प्रस्तुतकर्ता के रूप में उपन्यासकार

द्वारा `ज्यों की त्यों` प्रस्तुत किया गया है। इसके आरंभ में उपोद्घात रखा गया है। औपन्यासिक रचना की दृष्टि से इसे प्रथम अध्याय कहा जा सकता है। चौथी और पांचवी दोपहर की कहानियों को छोड़कर पहली, दूसरी, तीसरी और छठी दोपहर की कहानियों के साथ एक-एक `अनध्याय` की योजना की गई है। यद्यपि इन चारों अनध्यायों के द्वारा उक्त कहानियों की प्रतिक्रियात्मक रूप से आलोचनात्मक व्याख्या की गई है तथापि पाठकों के रस की दृष्टि से इन्हें भी अध्याय का प्रतिरूप ही माना जा सकता है। अंतिम सातवीं दोपहर की कहानी का कोई स्वतंत्र रूप नहीं है। इसमें मात्र पिछले कही गई छहों कहानियों का निष्कर्षात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। इससे भी अध्याय के रूप का ही बोध होता है। इस प्रकार यह कृति कुल मिलाकर 13 अध्यायों का एक लघु उपन्यास है।

प्रस्तुत उपन्यास का कथा-शिल्प नव शिल्पात्मक प्रयोगवादी पद्धति पर आधारित है। इसकी प्रत्येक कहानी में अलग-अलग वस्तु, पात्रों एवं उद्देश्यों की योजना की गई है। अतः इस दृष्टि से प्रत्येक कहानी का अपना स्वतंत्र अस्तित्व भी है। इस रूप में देखने पर यह उपन्यास अनेक कहानियों का एक आकलन या पात्रों के नामों की पुनरावृत्ति के होने से यह एक कहानी में अनेक कहानियों वाला कहानीमूलक उपन्यास सा लगता है। किन्तु तथाकथित भ्रम से बचने के लिए देखिये माणिक मुल्ला के ये शब्द " एक अविच्छिन्न क्रम में इतनी प्रेम-कहानियां बहुत काफी हैं, सच तो यह कि उन्होंने इतने लोगों के जीवन को लेकर एक पूरा उपन्यास ही सुना डाला, सिर्फ उसका रूप कहानियों का रखा ताकि हर दोपहर को हम लोगों की दिलचस्पी बदस्तूर बनी रहे और हम लोग ऊबें न।"[1] दूसरी बात यह है कि `कुल 115 पृष्ठों में सात दिन के भीतर अनेक वर्णों तथा अनेक

1- सूरज का सातवां घोड़ा-पृ0 103

जीवन प्रसंगों को इस कौशल से चित्रित किया गया है कि प्रत्येक प्रसंग तो अपने आप में पूर्ण है ही, सब एक दूसरे से भी सम्बद्ध होकर एकान्विति भी प्रदान करते हैं[1] तात्पर्य यह है कि कथा-सूत्रों के विकास की दृष्टि से प्रत्येक कहानी एक दूसरे की पूरक और परस्पर आश्रित हैं। इनसे कथा प्रवाह में कहीं भी बाधा नहीं पहुंचती। सभी कहानियां प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला के असफल प्रेम सम्बंधों की सामाजिक व्यास्था प्रस्तुत करती हैं। अतः कथानक की एक रूपता या एक सूत्रता को बनाए रखने की कलात्मक खूबी ही उ इसे उपन्यास के स्तर से गिरने नहीं देती। इसीलिए अज्ञेय जी ने इसे 'अनेक कहानियों में 'एक कहानी' वाला उपन्यास क ही कहा है। तथा इसे धर्म ग्रंथों की प्राचीन कथा-शैली वाला नवीन ढंग का उपन्यास भी माना है। 'सबसे पहली बात है उसकी गठन। बहुत सीधी, बहुत सादी, पुराने ढंग की-अलफ लैलावाला ढंग, पंचतंत्रवाला ढंग, बोकेच्छियों वाला ढंग जिसमें रोज किस्सा-गोई की मजलिस जुटती है।---यह सीधापन और पुरानापन इसीलिए है कि आपको भारती जी की बात के प्रति एक खुलापन पैदा हो जाये; बात वह फुरसत का वक्त काटने या दिल बहलाने वाली नहीं है, हृदय को कटक कचोटने, बुद्धि को झंझोड कर रख देनेवाली है। मौलिकता अभूतपूर्व, पूर्ण श्रृंखला-विहीन नयेपन में नहीं, पुराने में नयी जान डालने में भी है (और कभी पुरानी जान को नयी काया देने में भी)- और भारती ने इस ऊपर से पुराने जान पड़नेवाले ढंग का भी बिलकुल नया और हिन्दी में अनूठा उपयोग किया है।"[2] इसी तथ्य को डा० राममूर्ति त्रिपाठी जी के शब्दों में देखिये -"सूरज का सातवां घोड़ा' अपेक्षाकृत प्रौढ़ मस्तिष्क की उपज है और पुरानी कथा-श्रृंखला के आवरण में नई कला का प्रयोग किया गया है।"[3] उपन्यासकार ने तथाकथित पुरानी कथा-शैली को अपनाने के लिए अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है -"कथा-शैली भी कुछ अनोखे ढंग की है, जो है तो वास्तव में पुरानी ही, पर इतनी पुरानी कि आज के पाठक को थोड़ी नयी या

1- कैलाश जोशी - 'धर्मवीर भारती का उपन्यास साहित्य' - पृ0 25

2- दे0 सूरज का सातवां घोड़ा'-भूमिका

3- डा0 राममूर्ति त्रिपाठी- 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' - पृ0 223

अपरिचित सी लग सकती है। बहुत छोटे से चौखटे में काफी लम्बा घटनाक्रम और काफी विस्तृत क्षेत्र का चित्रण करने की विवशता के कारण यह ढंग अपनाना पड़ा है।"[1] महेन्द्र चतुर्वेदी जी के शब्दों में -"सूरज का सातवां घोड़ा तकनीकी की दृष्टि से एक अपूर्व रचना है। अनेक कहानियां स्वतंत्र होते हुए भीएक कहानी में समाहित हो जाती हैं। वे अनेक कहानियां भी हैं और एक गुंफित कहानी के अंश भी।"[2] वस्तुत: उक्त कथन भी विभिन्न कथा-सूत्रों में एकान्विति की क्षमता-कुशलता का ही द्योतक है।

डा० भारती जी ने इसके औपन्यासिक गठन के लिए विभिन्न कथा-सूत्रों में नाटकीय ऐक्य स्थापित करने का उपक्रम किया है। विभिन्न अनध्यायों में यह नाटकीय सौष्ठव को देखा जा सकता है। बेसिल हो गर्थ ने तो उपन्यासों में कथा सूत्रों की क्रमबद्धता के लिए नाटकीय ऐक्य पर विशेष बल दिया है -सम्पूर्ण उपन्यास में नाटकीय ऐक्य न हो तो उसका अपकर्ष होकर कई असम्बद्ध घटनाओं के रूप में विघटन हो जायेगा।"[3] इस उपन्यास में प्रयुक्त अनध्याय एक ओर दो कहानियों" के मध्य में आकर 'अन्तराल' या 'विराम' का कार्य करते हैं तो दूसरी ओर आगामी कहानी के लिए नाटकीय पृष्ठभूमि का भी निर्माण भी करते चलते हैं। अत: यह कहा जा सकता है कि नाटकीय शैली, प्रयोग, पात्रों की पुनरावृत्ति तथा आदि से अंत तक एक ही प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला के असफल प्रेम-संवेदनाओं को सामाजिक परिवेश में चित्रित करने के कारण इसमें एक विषय की एकरूपता व एकसूत्रता बनी रही है। डा० एस० एन० गणेशन जी के कथनानुसार 'विषयैक्य उपन्यास में एक अटूट कहानी के होने से नहीं, बल्कि उसके सभी पात्रों घटनाओं तथा भावों की पारस्परिक अन्विति से है। विषय के विविध अंगों के बीच में दृढ़ सम्बन्ध का होना उपन्यास के नाटकीय ऐक्य और प्रभाव के लिए अनिवार्य है।"[4]

1- सूरज का सातवां घोड़ा- निवेदन

2- महेन्द्र चतुर्वेदी-हिन्दी उपन्यास : एक सर्वेक्षण, पृ० 203

3. Ho gorth : The Technique of Novel-writing: Page-78

4- डा० एस० एन० गणेशन-'हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन'-पृ० 168

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सूरज का सातवां घोड़ा' की प्रत्येक कहानियों में वर्णित कथा-वस्तु अवश्य ही विविध-लच्छी फलकों पर आधारित है, किन्तु डा0 भारती जी के शिल्पात्मक कौशल ने इन्हें असम्बद्ध एवं तारतम्यहीन होने का अवसर नहीं दिया है। वे सभी कहानियां अंततः माणिक मुल्ला के प्रेम सम्बंधों की विशद चर्चा का ही प्रयास हैं इसमें नवीन कथा-शिल्प की वर्णनात्मक विश्लेषणात्मक, प्रतीकात्मक व नाटकीय जैसी पद्धतियों का बड़ी सफलतापूर्वक समन्वय हो पाया है।

समस्या एवं उद्देश्य :

प्रस्तुत उपन्यास निष्कर्षवादी प्रेम-कहानियों का आकलन है। इसके प्रमुख पात्र माणिक मुल्ला के मतानुसार 'वह निष्कर्ष समाज के लिए कल्याणकारी होना चाहिए'[1] स्वयं लेखक ने भी आरंभ में ही कहा है - "जो कुछ लिखता हूं उसमें सामाजिक उद्देश्य अवश्य है पर वह स्वान्तः सुखाय भी है। यह अवश्य है कि मेरे 'स्व' में आप सभी सम्मिलित हैं।"[2]

इस उपन्यास में प्रेम को माध्यम बना कर उसके द्वारा अर्थ और काम भावना पर आधारित निम्न-मध्यवर्गीय युवक-युवतियों के प्रेम, विवाह और समाज के स्तर पर उत्पन्न होनेवाली वर्तमानकालीन समस्याओं का यथार्थांकन किया गया है। अतः यहां प्रेम नितांत वैयक्तिक और समाज-निरपेक्ष नहीं है। माणिक मुल्ला के शब्दों में - "प्रेम नाम की भावना कोई रहस्यमय, आध्यात्मिक या सर्वथा वैयक्तिक भावना न होकर वास्तव में एक सर्वथा मानवीय सामाजिक भावना है, अतः

1- सूरज का सातवां घोड़ा - 'उपोद्घात' पृ0 20

2- वही- 'निवेदन'-

समाज व्यवस्था से अनुशासित होती है और उसकी नींव आर्थिक-संगठन और वर्ग-सम्बंध पर स्थापित है।"[1] इस प्रकार प्रेम को स्वस्थ व व्यापक दृष्टिकोण से देखते हुए उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रयास करना ही इस कृति का मूल उद्देश्य है। इस महद् उद्देश्य की पूर्ति के लिए लेखक ने उन निम्न-मध्यवर्गीय पात्रों की कुण्ठाओं का चित्रांकन किया है जो अपनी महज कायरता एवं परम्परित सामाजिक थोथी मर्यादा-भीरुता जनित विवशता के कारण आर्थिक संघर्षों व सामाजिक रूढ़ियों पर अपने प्रेम की बलि चढ़ा देते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों में उनका प्रेम सामाजिक जीवन की खाद नहीं बन पाता। माणिक मुल्ला, तन्ना और जमुना ऐसे ही कायर और कुण्ठित पात्र हैं।

लेखक ने तथाकथित प्रेम की असफलता का कारण उक्त पात्रों की आरोपित थोथी मर्यादा के अतिरिक्त आज की विषमतामूलक उन आर्थिक व्यवस्थाओं को भी माना है कि जिनसे समाज प्रभावित होता रहता है। दहेज की प्रथा इस आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का मूल है। यही कारण है कि जमुना का विवाह माणिक और तन्ना से न होकर एक बूढ़े से हो गया। लिली और तन्ना के विवाह का कारण भी प्रेम से अधिक अर्थ प्रधान-भावना ही रही। 'उस रूपवती विधवा(लिली) के पास जमीन-जायदाद काफी थी, न कोई देवर था, न कोई लड़का। अतः उसकी सहायता और रक्षा के ख्याल से तन्ना को इण्टरमीडिएट पास बताकर महेसर दलाल(तन्ना के पिता) ने उस लड़की से तन्ना की बात पक्की कर ली।'[2] लेखक ने इसीलिए प्रेम विवाह, समाज आदि को अर्थ से अनुशासित बताते हुए माणिक के शब्दों में कहा है कि 'जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूं तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढांचा हमारे मन पर इतना अजब सा

1- वही- पृ0 25

2- वही- पृ0 @ 57

प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएं उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं।"[1] तथा 'जमुना निम्न-मध्यवर्ग की भयानक समस्या है। आर्थिक नींव खोखली है उसकी वजह से विवाह, परिवार, प्रेम सभी की नींवें हिल गयी हैं। अनैतिकता छायी हुई है। ----असल मेंपूरी जिन्दगी की व्यवस्था बदलनी होगी।"[2]

इस प्रकार प्रेम के माध्यम से लेखक ने आज के आर्थिक-संघर्ष व नैतिक विशृंखलता प्रधान निम्न-मध्यवर्गीय जीवन या समाज में व्याप्त अनाचार, निराशा, कटुता और अंधेरों का नग्न चित्रण प्रस्तुत किया है।

हां, यह अवश्य हैकि अर्थ को उक्त सामाजिक विकृतियों का मूल कारण मानते हुए भी लेखक ने प्रेमजनित समस्याओं का हल संकीर्ण मार्क्सवादी विचारधारा में न ढूंढकर 'गुनाहों का देवता' की भांति मानवता के सहज मूल्यों पर आधारित वैदिक संस्कृति में खोजा है। अंतिम कहानी 'सूरज का सातवां घोड़ा' में उनका आस्थावादी दृष्टिकोण इसी तथ्य की ओर संकेत करता है। आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थाओं को बदलने के लिए व्यक्ति-सुधार याआत्म-सुधार की भावना वैदिक भावना है। माणिक के शब्दों में -"पर कोई न कोई ऐसी चीज है जिसने हमें हमेशा अंधेरा चीरकर आगे बढ़ने, समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुन: स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा उसे प्रकाश-वाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं। कहा भी गया है 'सूर्यआत्मा जगतस्तस्थुषश्च।"[3] यह भविष्य के सुखद सपने और वर्तमान के नवीन आकलन देनेवाला 'सूरज का सातवां घोड़ा' है।

1- वही- पृ0 52

2- वही- पृ0 46

3- वही- पृ0 105

डा0 सुषमा धवन के शब्दों में - 'यह घोड़ा 'भविष्य के सपनों का, जिसमें हमारा जीवन अधिक सुख-शान्तिमय होगा, जिसमें निराशा पर आशा की विजय होगी। उसी जीवन की झलक देने के उद्देश्य से उपन्यास की रचना की गई है।"[1]

अत: उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि डा0 भारती जी ने 'स्व' अर्थात् व्यक्ति(माणिक मुल्ला) के प्रेम के माध्यम से आज के निम्न-मध्यवर्गीय समाज की विसंगतियों व दुर्बलताओं की कटु व्यंग्यपूर्ण आलोचना करते हुए भविष्य के दिग्विजयी सातवें घोड़े के रूप में परम्परित रूढ़ व विकृत समाज के स्थान पर एक कल्याणप्रद आदर्श-समाज की प्रतिस्थापना की भावना को अपना महद् उद्देश्य बनाया है। इस दृष्टि से दो विरोधी बिन्दुओं व्यष्ठि और समष्ठि में समरसता प्रस्थापक प्रेम(माणिक मुल्ला के प्रेम में उक्त सामर्थ्य का अभाव है) के द्वारा सामंजस्य कराने का युगानुरूप उपक्रम इस कृति को समष्ठिगत् व्यक्तिवादी चेतना प्रधान उपन्यासों की कोटि में स्थानस्थ कर देता है।

<u>पात्र-विधान एवं चरित्र-चित्रण :</u>

इस उपन्यास में प्रयुक्त होनेवाले विभिन्न पात्रों को स्थूल रूप से इस प्रकार वर्गीकृत कियाजा सकता है। यथा-

<u>पुरुष-पात्र</u> :- माणिक मुल्ला, तन्ना, महेसर दलाल, चमन ठाकुर, रामधन, प्रकाश, श्याम, ओंकार तथा स्वयं उपन्यासकार।

<u>स्त्री-पात्र</u> :- जमुना, लिली और सती इत्यादि। इस प्रकार इसके अन्तर्गत कुल मिलाकर 12 पात्र हैं। उक्त पात्रों में माणिक मुल्ला, तन्ना, महेसर दलाल, जमुना, लिली और सती आदि छह पात्र प्रमुख हैं, रामधन और चमन ठाकुर दो गौण

1- डा0 सुषमा धवन - 'हिन्दी उपन्यास' - पृ0 262-263

पात्र हैं तथा शेष चार अतिरिक्त पात्र हैं। जिन्हें कथा-विकास की प्रेरणा एवं विभिन्न कहानियों की आलोचना के निमित्त उपसृष्ट किया गया है। ऊपर परिगणित छह पात्र वर्ग-प्रतिनिधि होने के कारण समस्यामूलक पात्र हैं। इनमें महेसर दलाल को छोड़कर शेष पांच प्रमुख पात्र अपनी-अपनी कहानियों में नायक एवं नायिका की भूमिका प्रस्तुत करते हैं। किन्तु आदि से अन्त तक इस उपन्यास में पै प्रमुख पात्र या नायक की दृष्टि से एक मात्र माणिक मुल्ला का ही चरित्र पाठकों के सामने उभर आता है। नायक के सम्बंध में पर्सी लव्बाक का मत है कि- "नायक कथा का संचालक होता है और कथा में एकसूत्रता लाता है।"[1] इस दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि माणिक मुल्ला के द्वारा ही इस उपन्यास की कथा का सारा संचालन कहीं वक्ता तो कहीं सूत्रधार के रूप में हुआ है। यह अवश्य है कि इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याओं के आधार पर विविधमुखी पात्रों के चरित्रों की गुंजाइश होने के कारण इसे चरित्र-प्रधान या समस्यामूलक लघु उपन्यास भी कहा जा सकता है।

इस उपन्यास मेंपात्रों की विविधता के होने पर भी कथा-प्रवाह में कहीं भी शिथिलता अथवा अवरोधात्मक स्थिति की प्रतीति नहीं होती। क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से उक्त-निम्न-मध्यवर्गीय पात्र अपनी पृथक-पृथक् कथा को लेकर चलते हैं परन्तु परोक्ष रूप से वे सभी पात्र माणिक मुल्ला के भावुक व साहसहीन व्यक्तित्व से जुड़कर आज की सामाजिक स्थितियों का जीवन्त चित्रण प्रस्तुत करते हैं। अतएव तथाकथित पात्र कथा-वस्तु को असम्बद्ध होने से बचाते ही नहीं, वरन् एक दूसरे के पूरक भी हैं साथ ही वे कथा-वस्तु में लक्ष्योन्मुखी गति व प्रभाव भी उत्पन्न करने में सहायक एवं सक्षम हो सके हैं।

---

1. The Craft of fiction- Page-131

यदि प्रमुख पात्रों की चारित्रिक रेखाएं खींचने का प्रयास किया जाए तो प्रथमत: माणिक मुल्ला के चरित्र के मुख्यत: तीन रूप उभर आते हैं - यथा-भावुक व आदर्शवादी प्रेमी, कुशल एवं अहंवादी कहानीकार तथा आलोचक व जीवन-दृष्टा का रूप। माणिक ने अपनी जिन्दगी में तीन लड़कियों(जमुना, लिली और सती) से प्रेम किया था, किन्तु इन तीनों में से किसी के भी प्रेम को वे अपनी कायरता एवं सामाजिक प्रतिबन्धनों के कारण सामाजिकता से जोड़ने में असमर्थ रहे। जमुना ने उन्हें प्रेम का पहला पाठ पढ़ाया था। उक्त प्रेम की प्यास लिली के प्रेम-काल में उनके आदर्शवादी प्रेमी के रूप में परिणित हो जाती है। लिली के आत्म-समर्पण करने पर भी वे उसे रोमाण्टिक कल्पनाओं में देखते रहे किन्तु उसके आंसू नहीं पोंछ सके। इसी प्रकार मर्यादा-भीरु माणिक का प्रेम सती को भी साथ न दे सका। परिणामत: सती की मृत्यु के समाचार सुनकर उनमें बेहद परिवर्तन आ गया। वे असामाजिक हो गये और उनकी अतृप्त-कामनाएं उनकी कृतियों में मृत्यु की प्रतिध्वनि के रूप में परिवर्तित हो गईं। इस प्रकार माणिक आज के उन निम्न-मध्यवर्गीय प्रेमी युवकों का प्रतिनिधित्व करता है जिनमें अपने प्रेम की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए विद्रोह एवं साहस की कमी है। इसके परिणाम-स्वरूप अपनी कुण्ठित और आत्म-पीड़ित अवस्था में और कुछ चारा न पाकर प्रेम की आदर्शपरक रोमाण्टिक कल्पनाओं में रहकर अपने असफल प्रेम की करुण गाथा को व्यक्त करते रहते हैं। इस दृष्टि से माणिक मुल्ला 'गुनाहों का देवता' के 'चन्दर' का ही दूसरा रूप है। माणिक की तरह चन्दर ने भी एक साथ तीन लड़कियों(सुधा, पम्मी और बिनती) से प्यार किया था। किन्तु परम्परित नैतिक व सामाजिक बन्धनों के कारण वह अपने प्रेम को सामाजिक रूप नहीं दे सका।

माणिक के भीतर एक अहंवादी कहानीकार भी छिपा हुआ है जो उन्हें अपने से इतर श्रेष्ठ व प्रतिभाशाली साहित्यकारों को उपेक्षित दृष्टि से देखा करता है। कथा-साहित्य में अपने को निष्कर्षवाद का प्रवर्तक मानते हुए अपने

पाठकों में अपनीप्रतिभा, मौलिकता व विश्लेषणा-शक्ति की धाक जमाते रहते हैं। उनमें किसी भी शीर्षक को चुनकर कहानी कहने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है।

साथ ही साथ जहां एक ओर वे जीवन-जगत् के प्रति आस्थावान हैं वहीं उनमें एक सफल आलोचक एवं जीवन-दृष्टा का व्यक्तित्व भी उपलब्ध होता है। उन्होंने प्रेम को आर्थिक व सामाजिक व्यवस्थाओं से अनुशासित मानते हुए पुरानी रूढ़ियों एवं परंपराओं की कटु आलोचना की है, इससे उनके जीवन-दृष्टा का रूप भी उभर कर प्रत्यक्ष हो जाता है।

शेष पुरुष पात्रों में मंस्सर दलाल व चमन ठाकुर खल नायक के रूप में चित्रित हुए हैं। लेखक ने इनकी असद् प्रवृत्तियों को सामाजिक अनैतिकता के परिवेश में उभारा है।

स्त्री पात्रों में केवल जमुना के ही पूरे जीवन का अंकन हो सका है शेष दो नारी पात्र लिली और सती के जीवन की झलक मात्र दिखाई गई है। जमुना आज के निम्न-मध्यवर्गीय उन नब्बे प्रतिशत नारियों का प्रतिनिधित्व करती है जो सामाजिक व आर्थिक विषमताओं के कारण जीवन भर कुण्ठित ही नहीं रहती अपितु रामधन जैसे तांगेवाले लोगों के अनैतिक सेक्स-सम्बंधों का शिकार भी हो जाया करती है। लिली आज की शिक्षित, अलब्ध यौवना किन्तु भावुक युवती का रूप प्रस्तुत करती है उसे भी जमुना की तरह माणिक से रोमाण्टिक कल्पनाएं व मीठे गीत ही उपलब्ध होते हैं। सती पढ़ी लिखी नहीं है किन्तु वह एक सच्ची मित्र, व प्रेमिका के रूप में अपनी सहानुभूति व साहसिकता का परिचय दे देती है। वक्त आने पर अपने शील की पावनता का स्वयं द्वारा रक्षाण भी उसमें आर्य सन्नारी की झांकी करा देता है।

चरित्र-चित्रण की शिल्प-विधि :

प्रस्तुत उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' मुख्यतया आलोचनात्मक शैली में लिखा गया है। माणिक मुल्ला के द्वारा कही हुई उसके जीवन की मार्मिक कहानियों को उपन्यासकार ने केवल प्रस्तुतकर्ता के रूप में ही प्रस्तुत कर दी है। माणिक मुल्ला के जीवन में आने वाले विभिन्न पात्रों के संवादों, तथा घटित घटनाओं का ज्यों का त्यों अंकन होने के कारण अधिकतर नाटकीय चरित्रों की ही सृष्टि हो सकी है, इसमें लेखक को अपनी ओर से अपने चरित्रों के सम्बन्ध में कुछ कहने का अवसर स्वतंत्र रूप से नहीं मिल पाया है। पूरा उपन्यास एक पूरे निम्न-मध्यवर्गीय समाज का चित्रण और आलोचन होने के कारण इसमें चरित्र-चित्रण की वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक शिल्प विधि को प्रमुख रूप से अपनाया गया है। अतः पात्र-चरित्र भी वर्ग-प्रतिनिधि होने के कारण 'व्यक्ति' न होकर 'टाइप' ही बन गए हैं। मार्मिक कथा-वस्तु के होने के कारण इसमें चरित्रों के अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट रूप से स्वतंत्रतया उभरने देने की काफी गुंजाइश थी किन्तु व्यक्ति-जीवन को प्रस्तुतीकरण की शैली में चित्रित कर पाने के कारण अवश्य ही कुछ बाधा या अवरोधात्मक स्थिति उत्पन्न हो गई है।

अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर 'सूरज का सातवां घोड़ा' के पात्रों के चरित्र-चित्रण की शिल्प-विधियों को निम्नांकित रूप से देखा जा सकता है। यथा- परिचयात्मक या वर्णनात्मक शिल्प-विधि, (2) संवादात्मक शिल्प-विधि और (3) विश्लेषणात्मक शिल्प-विधि। इस उपन्यास के 'उपोदघात' में बड़े विस्तार के साथ माणिक मुल्ला का परिचयात्मक शैली में चित्रांकन किया गया है। इसी प्रकार 'पहली दोपहर की कहानी' नमक की अदायगी में माणिक मुल्ला के साथ ही जमुना की आदतों, हरकतों, स्वभाव, व रुचियों के सम्बंध में प्रकाश डाला गया है। इसी में महेसर दलाल की दुराचारिता और तन्ना के

दु:खद जीवन की आलोचना भी की गई है ।[1] इस प्रकार की वर्णनात्मक या आलोचनात्मक चरित्र-चित्रण की शैली को इसमें यत्र-तत्र सर्वत्र देखा जा सकता है ।

संवादात्मक शैली द्वारा चरित्र चित्रण को माणिक-जमुना, माणिक-सत्ती और माणिक-लिली के बीच के संवादों में देखा जा सकता है । संवाद छोटे, पात्रानुकूल और व्यक्ति-चरित्र को उद्घाटित करने में अत्यन्त सफल हैं । इसका एक उदाहरण दृष्टव्य होगा -

'माणिक और लिली के संवाद द्वारा

"माणिक कुछ बात करो । मन बहुत घबरा रहा है ।'

'अच्छा आवो बात करें, पर हमारी लिली जितनी अच्छी बात कर लेती है, उतनी मैं थोड़े ही कर पाता हूँ । लेकिन खैर । तो तुम्हारी कम्मो के समझ में तसवीर नहीं आयी ।'

'उहुंक ।'

'कम्मो बड़ी ~~कुन्देह~~ कुन्दजेहन है, लेकिन कोशिश हमेशा यही करती है कि सब काम में टांग अड़ाये ।"[2]

उक्त संवाद में पात्रों की मनोदशाओं तथा चारित्रिक विशेषताओं को उद्घाटित किया गया है ।

मनोविश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग चरित्र-चित्रण शैली के अनेक घटकों द्वारा किया जाता है । पात्रों के हाव-भाव, कार्य-कलापों एवं स्वप्न-प्रतीकों आदि के माध्यम से किया गया चरित्रांकन मनोविश्लेषणात्मक शिल्प-विधि के ही घटक हैं । प्रस्तुत उपन्यास में चरित्रांकन के उक्त घटकों का प्रयोग किया गया है । हाव-भाव एवं कार्यगत चेष्टाओं के द्वारा किया गया चरित्रांकन का एक उदाहरण निम्नस्थ है -

---

1- सूरज का सातवां घोड़ा-(सा0 सं0 1971) पृ0 26

2- वही- पृ0 71

" मैं पहुंचा तो देखा कि माणिक मुल्ला चुपचाप बैठे खिड़की की राह बादलों की ओर देख रहे हैं। और कुरसी से लटकाये हुये दोनों पांव धीरे-धीरे हिला रहे हैं। मैं समझ गया कि माणिक मुल्ला के मन में कोई बहुत पुरानी व्यथा जाग गयी है क्योंकि ये लक्षण उसी बीमारी के होते हैं। ऐसी हालत में साधारणतया माणिक जैसे लोगों की दो प्रतिक्रियाएं होती हैं। अगर कोई उनसे भावुकता की बात करे तो वे फौरन उसकी खिल्ली उड़ायेंगे पर जब वह चुप हो जायेगा तो धीरे -धीरे खुद वैसी ही बातें छेड़ देंगे।"[1] स्वप्न-प्रतीकों के माध्यम से भी अपने पात्रों के चरित्रों को उपन्यासकार ने उद्घाटित किया है। इस उपन्यास में दो स्वप्न आते हैं, एक तीसरी कहानी की समाप्ति के बाद 'अनध्याय' में। तथा दूसरा स्वप्न छठी कहानी के बादवाले 'अनध्याय' में आता है। दोनों स्वप्न लेखक द्वारा देखे गए हैं। प्रथम स्वप्न में मध्यवर्गीय 'तन्ना' के जीवन की आर्थिक, सामाजिक व पारिवारिक कटुताओं व अभावों का बड़ा ही मार्मिक अंकन किया गया है।"[2] तथा द्वितीय स्वप्न में मध्यवर्गीय तन्ना, एवं सती के भविष्यहीन जीवन का यथार्थांकन किया गया है।[3]

कथोपकथन एवं भाषा-शैली :

प्रस्तुत उपन्यास में अपेक्षाकृत कम ही कथोपकथनों अथवा संवादों का उपयोग हुआ है। इसका प्रमुख कारण है उसकी विवरणात्मक एवं आलोचनात्मक कथा-शैली की प्रधानता। किन्तु इसके बावजूद भी इसके संवादों में स्वाभाविकता,

---

1- वही- पृ0 65 तथा पृ0 97-98 पर "मैं महसूस--- पहचान नहीं पाया।
2- वही- पृ0 62
3- वही- पृ0 99

सरलता, सूक्ष्मता, संक्षिप्तता, प्रभावोत्पादकता, उपयुक्तता, उद्देश्यपूर्णता, सम्बद्धता एवं मनोवैज्ञानिकता आदि जैसे वे सभी गुण उपलब्ध होते हैं जो किसी भी संवाद-योजना को सार्थक या अत्यंत सफल बनाने में सहायक होते हैं। डा0 भारती जी ने इसके अन्तर्गत जिन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संवाद-योजना की है, वे निम्नांकित हैं -

(1) चरित्र-चित्रण करने व पात्रों की मनोदशा को बदलने एवं उसके प्रकाशन के लिए (2) कहानी में रोचकता और जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए (3) कहानियों की आलोचना एवं समस्या-विश्लेषण करने के हेतु तथा (4) अपने जीवन-दर्शन ; विचारों और मान्यताओं की अभिव्यक्ति के लिए। इनमें से कुछ के उदाहरण यहां दिए जा रहे हैं -

संवादों द्वारा चरित्र-चित्रण का एक उदाहरण देखिये जिसके द्वारा पात्रों की मन:स्थिति का प्रकाशन भी हो पाया है - संवाद माणिक और बारिश की बौछार से भीगतीहुई लिली के बीच का है -

- लिली ने पूछा, पूछा, 'हटें ?' माणिक बोले, 'नहीं'।

'सरदी लग रही है ?' माणिक ने पूछा।

'नहीं, सरदी नहीं लग रही है। लेकिन तुम बड़े पागल हो।'

'हूं तो नहीं कभी-कभी हो जाता हूं। लिली, एक अंग्रेजी की कविता है- 'ए लिली गर्ल नाट मेड फार वर्ल्डस पेन।' एक फूल सी लड़की जो इस दुनिया के दु:ख दर्द के लिए नहीं बनी।'[1] कहानी में रोचकता व जिज्ञासा उत्पन्न करने के निमित्त उपन्यासकार ने हास्य और व्यंग्यपूर्ण संवादों की योजना की है -यथा-

---

1- सूरज का सातवां घोड़ा - (सा0 सं0 1971) पृ0 72

"आओ प्यारे बन्धुओ। देखो तुम लोगों ने। खुली हवा में घूमने और सूर्यास्त के पहले खाना खाने से सभी शारीरिक और मानसिक व्याधियां शान्त हो जाती हैं अत: इससे क्या निष्कर्ष निकला ?"

"खाओ, बदन बनाओ।"-----

"लेकिन माणिक मुल्ला।" ओंकार ने पूछा, "यह आपने नहीं बताया कि लड़की को आप कैसे जानते थे, कौन थी यह लड़की ?"[1] कहानियों की आलोचना व समस्या-विश्लेषण के लिए प्राय: लम्बे संवादों की योजना की गई है। इस उपन्यास की कहानियों एवं अनध्यायों में माणिक मुल्ला के लम्बे सम्वादों और उनकी मित्र-मण्डली द्वारा पृच्छित प्रश्नों की मीमांसा-में ऐसे ही संवादों की सृष्टि की गई है। उपन्यासकार के जीवन-दर्शन व मान्यताओं की अभिव्यक्ति यहां भी हुई है। इन संवादों की भाषा में विविध पात्रों, प्रसंगों एवं विषयों के अनुरूप परिवर्तनशीलता तो मिलती ही है साथ ही इनमें, कथा-प्रवाह में प्रभाव उत्पन्न करने की पूर्ण क्षमता भी विद्यमान है। देखिये -"खैर तो माणिक मुल्ला बोले कि, "जब मैं प्रेम पर आर्थिक प्रभाव की बात करता हूं तो मेरा मतलब यह रहता है कि वास्तव में आर्थिक ढांचा हमारे मन पर इतना अजब सा प्रभाव डालता है कि मन की सारी भावनाएं उससे स्वाधीन नहीं हो पातीं और हम जैसे लोग न उच्च वर्ग के हैं, न निम्नवर्ग के, उनके यहां रूढ़ियां, परम्पराएं, मर्यादा भी ऐसी पुरानी और विषाक्त हैं कि कुल मिलाकर हम सबों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि हम यन्त्र-मात्र रह जाते हैं। हमारे अन्दर उदार और ऊंचे सपने खत्म हो जाते हैं और एक अजब सी जड़ मूर्च्छना हम पर छा जाती है।" प्रकाश ने जब इसका समर्थन किया तो मैंने इनका विरोध किया और मैंने कहा, "लेकिन व्यक्ति को तो हर हालत में ईमानदार बना रहना चाहिए। यह नहीं कि वह टूटता -फूटता चला जाये।"

1- वही- पृ0 75

तो माणिक मुल्ला बोले, "यह सच है, पर जब पूरी व्यवस्था में बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी में है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गयी सारी नैतिक विकृति को भी अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओं को भी क्योंकि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते, अतः नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति में समझौता करते जाते हैं।"[1]

भाषा-शैली की दृष्टि से देखने पर प्रस्तुत उपन्यास की भाषा 'गुनाहों का देवता' की तरह रूमानी शैली प्रधान नहीं है। इसमें बोल-चाल के लहजे की जन-साधारण-सुलभ भाषा का प्रयोग किया गया है। इसके लिए उपन्यासकार ने कहा है - "मेरी आदत के मुताबिक उनकी (माणिक मुल्ला की) भाषा रूमानी चित्रात्मक, इन्द्रधनुष और फूलों से सजी हुई नहीं है। "इसका मुख्य कारण यह है कि ये कहानियाँ माणिक मुल्ला की हैं, मैं तो केवल प्रस्तुतकर्ता हूं, अतः जैसे उनसे सुनी थी, उन्हें यथा सम्भव वैसे ही प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूं।"[2] किन्तु इसमें माणिक आदि द्वारा प्रस्तुत कहानियों का विश्लेषण और व्याख्या करने का ढंग प्रस्तुत होने के कारण इसकी भाषा शैली ने आलोचना एवं व्याख्या प्रधान भाषा का रूप ग्रहण कर लिया है। यहाँ इस बात का अवश्य ही ध्यान रखना उचित होगा कि इसकी भाषा प्रायः शिक्षित पात्रों के द्वारा प्रयुक्त की गई है अतः वह कथन-भंगिमा के अनेक विध स्तरों पर आकर विविध प्रकार की शैलियों का चोला धारण कर लेती है। इस बिन्दु से देखने पर इसके अन्तर्गत प्रायः निम्नांकित शैलियों के प्रयोग को देखा जा सकता है - (1) वर्णनात्मक शैली

1- वही- पृ0 52

2- वही- पृ0 22

(2) विश्लेषणात्मक शैली (3) प्रतीकात्मक शैली (4) नाटकीय शैली (5) मनोविश्लेषणात्मक शैली और (6) लोक कथात्मक शैली ।

वर्णनात्मक शैली का प्रयोग माणिक मुल्ला द्वारा कथित कहानियों को संक्षेप में प्रस्तुत करते समय प्रस्तुतकर्ता उपन्यासकार ने किया है । विश्लेषणात्मक शैली का उपयोग तन्ना से संदर्भित शीर्षक विहीन कहानी, लिली की कहानी, 'क्रमागत' तथा 'सातवीं दोपहर' की चर्चा में कहानियों के विश्लेषण के हेतु किया गया है । प्रतीकात्मक शैली का उपयोग तीसरी व छठी दोपहर के अंत में आनेवाले उन दो अनध्यायों में किया गया है जिनमें लेखक ने 'स्वप्न' देखा है । इसके अतिरिक्त उपन्यास का शीर्षक स्वयं प्रतीकात्मक है । इसी प्रकार इसकी कहानियों के प्रत्येक शीर्षक भी प्रतीकात्मक हैं । अतः भाषा ने भी प्रसंगानुकूल तो प्रतीकात्मक या सांकेतिक शैली का रूप ले लिया है । नाटकीय शैली का सफल प्रयोग दूसरी कहानी के बाद के 'अनध्याय' में मिलता है । स्वप्न-सम्बंधित 'अनध्याय' और चौथी कहानी का प्रकृति चित्रण मनोविश्लेषणात्मक शैली के सुंदर उदाहरण हैं ।

लोक-कथानक शैली की दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि इसमें पंचतंत्र और कथा-सरित्सागर की लोक-कथात्मक पद्धति का सफलता पूर्वक निर्वाह किया गया है । कथा-वक्ता माणिक मुल्ला के द्वारा श्रोता मित्र-मण्डली को सतत सात दिनों तक प्रत्येक दोपहर में कहानियां सुनाना, वक्ता व श्रोताओं के बीच जिज्ञासापूर्ण प्रश्नोत्तरों का होना, कहानियों के अंत में 'अनध्यायों' के रूप में निष्कर्ष रूपी प्रसाद का बांटना तथा कहानी से कहानी के उत्पन्न होने के कुतूहलप्रद क्रम की आयोजना का ढंग आदि इसकी लोक-कथात्मक शैली के आवश्यक उपकरण हैं । तथाकथित शैली के चमत्कृत प्रयोग को लक्षित करते हुए प्रायः विद्वानों ने इसे 'सहस्र-रजनी (Thousand and one night.)' 'हेप्ता मेरा', 'डेकामेरा' आदि सी रचनाओं से प्रभावित माना है ।

ग्यारह सपनों का देश[1]

ऊपर विवेचित दो उपन्यासों के अतिरिक्त डा0 भारती जी रचित कोई तीसरा उपन्यास दृष्टि-पथ में आया नहीं है। केवल श्री लक्ष्मीचंद्र जैन जी के सम्पादकत्व में विभिन्न लेखकों के द्वारा लिखा गया सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' (   ) में प्रथम और अंतिम अध्याय 'आदिम अग्नि और अनिश्चय की घाटियां' तथा 'आदिम अग्नि, उगता सूरज और दीपशिखा' डा0 भारती जी द्वारा लिखे गये हैं। इसमें प्रत्येक कथा-लेखकों ने अपने अपने दृष्टि-कोण तथा व्यक्तित्व के आधार पर कथा-वस्तु को विभिन्न स्तरों से मोड़ने तथा विकसित करने का प्रयास किया है। अतः इसके वस्तु-विन्यास में प्रायः कथान्विति का अभाव एवं असंतुलन पाया जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास में मीनल की कथा मुख्य है, तथा हरीन्द्र और श्यामली की कथा प्रासंगिक है। संपूर्ण कथा-चक्र मीनल के इर्द-गिर्द संक्रमित होता रहता है। इसमें विभिन्न लेखकों ने आज की नारी को उसकी अनेकोन्मुखी समस्याओं के नये-नये कोणों से देखने का प्रयत्न किया है।

प्रारम्भ में डा0 भारती जी ने 'देश के नव-निर्माण' की भावना को अपना उद्देश्य बनाया था - 'राष्ट्र निर्माण की समस्या आज ज्वलंत समस्या है। लेखक के लिये नव-निर्माण का अर्थ अन्ततोगत्वा देश की चेतना के निर्माण का है। ------- इस अध्याय में समस्या और स्थितियों की ओर संकेत देकर ही छोड़ दिया है कि अन्य सहयोगियों के लिए अपना कहने और मेरे कहने को संशोधित करने का पूरा स्कोप रहे।'[2]

1- 'ज्ञानोदय' पत्रिका में सर्वप्रथम सहयोगी उपन्यास के रूप में यह एक प्रयोग था। तद्पश्चात भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'ग्यारह सपनों का देश' का पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ।

2- सं0 श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन 'ग्यारह सपनों का देश' (द्वि0 सं0 1966) पृ0 12

प्रस्तुत उपन्यास में तथाकथित उद्देश्य की पूर्ति कहां तक हो सकी है इसे एक सजग पाठक भलीभांति जान सकता है।

कहानी-साहित्य

कहानीकार डा0 धर्मवीर भारती एवं उनकी प्रतिनिधि रचनाएं :

स्वातंत्र्योत्तर पीढ़ी के समष्टिपरक नये कहानीकारों में अपनी विशिष्ट कहानियों के महत्वपूर्ण प्रदेय के कारण डा0 धर्मवीर भारती जी का स्थान अप्रतिम है। इनकी कहानियों में स्वच्छंद भावों की रेशमी-रश्मियों के ताने-बानों से निर्मित आकाशीय लोक में इन्द्रधनुषी कल्पना के पंख लगाकर मुक्ततया उड़नेवाले अपने पूर्ववर्ती छायावादी कहानीकारों की विकासात्मक चेतना के साथ ही अपने समय की कहानी-कला के बदलते हुए मिजाजों और स्वरों कीसंगीतात्मक झंकृतियों का जायजामी मिलता है। इनकी कहानियों में विभिन्न स्तरीय पाठकों को आद्योपान्त एक ऐसा हिप्नोटाइज्ड् स्वर मिलता है कि जिसकी प्रभाव-छाया में प्रथमत: 'ना', 'नहीं' करते हुए भी अंततोगत्वा उनकी स्थिति ठीक वैसे ही मंत्र-मुग्ध सी हो जाती है जैसे बीन के आगे विवशतावश सर को धुनाते हुए सपेरे के सांप की। वस्तुत: यही अद्भुत जादू किंवा प्रतीति-बोध इनकी कहानियों की सफलता का मेरुदण्ड है। तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार कीविषय-वस्तु अथवा जीवन-जगत् की साधारण से साधारण कोई भी घटना क्यों न हो, उस पर बड़ी खूबी या कुशलता से हाथ जमाते हुए यथेष्ट प्रभाव को उत्पन्न कर देना इनके लिये वैसा ही सहज और सरल है जैसा कि बाजीगर के लिये मुंह से आग निकालना। 'सूरज का सातवां घोड़ा' का अपने को निष्कर्षवादी कहानियों का प्रवर्तक मानने-वाला पात्र 'माणिक मुल्ला' वस्तुत: डा0 भारती जी के इसी कहानीकार के

रूप का द्योतक है। मोपासां की एक कहानी `धागे का टुकड़ा` को उसके अनेक परिशिष्ट में देखते हुए डा० भारती जी ने एक स्थान पर लिखा है - `आज विदेश में भी और देश में भी बहुत से कहानीकार एक दार्शनिक चिन्तक और द्रष्टा का मुखौटा लगाकर, पोज़ बनाकर उसी सवाल को अक्सर पेश करते हैं मगर कहां वह सादगी, कहां वह सादी-सीधी मगर बेहद असर करनेवाली कहानी कहने की ताकत। और सबसे बढ़कर यह खासियत कि उस वक्त वह झकझोरती नहीं सिर्फ आहिस्ते से दिमाग में एक दर्द का किनका बनकर बस जाती है - बाद में बार-बार करकने के लिए।"[1] प्रस्तुत कथन को डा० भारती जी की कहानियों के बारे में भी कहने में, किसी प्रकार की अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती। स्वयं ही उन्होंने कहा भी है - "अपने साहित्य केपाठकों में अपनी किसी भी पंक्ति द्वारा जो तन्मयता जगा पाता हूं - इस भाव-बोध की रचना ही मेरी सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो अलग-अलग पाठकों के लिए अलग-अलग कृति से जागती है।"[2]

कहानी-कला के क्षेत्र में डा० भारती जी प्रसाद, की `मधुवा`, `गोर्की की `शिशिर की शाम`, टैनेसी विलियम्स की `रुबियो व मोरेनो`, तथा फ्लावेयर की `एक सीधी सरल आत्मा` जैसी एक सवाल को विविध ढंग से पेश करने की कोशिश करनेवाली कहानियों की कथन-पद्धति से अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। उन्होंने यह स्पष्ट स्वीकार किया है कि `यह सब कहानियां आज तक दिमाग में बसी रही हैं।"[3] इसी प्रकार मोपासां और आस्कर वाइल्ड भी उनके प्रेरणास्तम्भ रहे हैं। आस्कर वाइल्ड की सी स्वच्छंद कल्पना प्रिय शैली तथा सौन्दर्य विधायक दृष्टि उनके कहानी-साहित्य में प्रति पग देखने को मिलती है। इतना होते हुए भी

1- `पश्यन्ती` (द्वि० सं० 1972) पृ० 42

2- दे० `कादम्बिनी` जून 1973 `एकांत की तलाश में धर्मवीर भारती` शीर्षक इण्टरव्यू।

3- पश्यन्ती`, वह एक कहानी और उसके अनेक परिशिष्ट शीर्षक निबंध-पृ० 42

इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि आलोच्य कहानीकार की अपनी अलग-अलग परिस्थितियां और परिवेश है और है अपना अलग व्यक्तित्व । और यही वस्तु-स्थिति के होने के कारण उनकी कहानियों के निजी महत्व एवं स्वतंत्र अस्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

आज तक डा० धर्मवीर भारती जी के चार कहानी-संग्रह 'मुर्दों का गांव' (1946), 'स्वर्ग और पृथ्वी' (सं0 2006), 'चांद और टूटे हुए लोग' (1952) तथा 'बंद गली का आखिरी मकान' (1955 से लेकर 1969 तक की चार कहानियां संकलित हैं) प्रकाशित हो पाए हैं । 'मुर्दों का गांव ' में सन् 1942 के बंगाल के भयानक अकाल-काण्ड पर आधारित नव कहानियां संकलित हैं । 'स्वर्ग और पृथ्वी' कहानी संग्रह में कुल चौदह कहानियां हैं । तदनन्तर 'मुर्दों का गांव' की सभी कहानियाँ तथा 'स्वर्ग और पृथ्वी' की 'आधार और प्रेरणा', 'अमृत की मृत्यु', 'स्वर्ग और पृथ्वी', 'कवि और जिन्दगी', 'पिरामीड की हंसी' तथा 'युद्ध, मृत्यु और कविता' जैसी छह कहानियों को छोड़कर और अन्य नई नव कहानियां (हरिनाकुस और उसका बेटा', 'कुलटा', 'मरीज नम्बर सात', 'धुंआ', 'बराज', 'अगलाअवतार', 'चांद और टूटे हुए लोग', 'भूखा ईश्वर', 'पूजा' आदि) जोड़कर कुल 25 कहानियों के आकलन के रूप में 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह प्रकाशित किया गया । इसमें द्वितीय खण्ड की भूमिका, 'मुर्दों का गांव' (1946) में प्रकाशित 'कहानियों से पहले'। भूमिका-वक्तव्य को जो सचमुच अपने नये कथ्य एवं रूप में एक ओर नई कहानी है को भी स्थान दिया गया है । प्रस्तुत संग्रह की कहानियां अपने समस्त प्रतीकात्मक भाव-बोध के धरातल पर कर्म, प्रेम और ज्ञान के समन्वय में त्रिवेणी-धारा की प्रतीति करा देती हैं । प्रस्तुत कहानी संग्रह में नई कहानी के आरम्भिक दौर की कहानियां हैं फिर भी इनमें कथ्य की ताजगी एवं शिल्प की नवीनता के होने के कारण आलोच्य कहानीकार की कहानी -कला के विकास-क्रम को भी देखा जा सकता है । 'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह में 'गुल की बन्नो'(1955), 'सावित्री नम्बर दो'(1962), 'यह मेरे लिए नहीं'(1963)

और बन्द गली का आखिरी मकान (1969) जैसी चार कहानियां संकलित हैं।[1] प्रस्तुत कहानियां डा0 भारती जी की प्रौढ़ता-प्राप्त कहानी-कला के परिपक्व रूप की प्रतीति करा देती है। इनके अतिरिक्त 'आश्रम' नाम से एक और लम्बी कहानी देखने को मिलती है।[2] प्रस्तुत कहानी आज के विवाह-पूर्व काम-सम्बंधों एवं तज्जनित विकृतियों की यथार्थपूर्ण ट्रेजडी को चित्रित करते हुए अपने यह उद्देश्य में कि आश्रम जैसे पवित्र और नियंत्रित वातावरण में भी स्त्री-पुरुष की कामेच्छा अंकुशित नहीं रह पाती, सफल हो पाई है।

-वस्तु -चयन का क्षेत्र :

उक्त कहानियों का अधिकांशत: परिवेश प्राय: निम्न-मध्य वर्गीय कस्-बाई जीवन के यथार्थ रूप को प्रस्तुत करता है। जहां कहीं गल्पात्मक सूत्र अघटित वस्तु किंवा कल्पनात्मक परिवेश की परिसृष्टि हुई है वहां भी ये कहानियां आज के जीवन की मार्मिक अनुभूतियों को उनके गहरे अर्थों तक पहुंचाने में सफल हुई हैं। आज के संक्रान्तिमूलक विभिन्न संदर्भों में व्यक्ति को उसके सामाजिक, पारिवारिक व आर्थिक आदि परिवेश में चित्रित करते हुए नवोद्भव वैयक्तिक-सामाजिक समस्याओं को परम्परा-विनिर्मुक्त -नव प्रगतिशील मानव-मूल्यों के स्तर पर प्रस्थापित करना इन कहानियों का प्रमुख स्वर रहा है। यही कारण है कि डा0 भारती जी की कहानियों में मानवीय संवेदना की हृद-तंत्री को झकझोर देनेवाले व्यथालोड़ित विविध भाव-स्वरों की व्यंजना हो पाई है।

1- इस सम्बंध में डा0 भारती ने कहा है - 'गुलकी बन्नो' के बाद वर्षों की खामोशी को सच पूछिये तो तुड़वाया मोहन राकेश और कमलेश्वर की प्यार भरी लानत मलामतों ने। यह मेरे लिए नहीं, सावित्री नम्बर दो, बन्द गली का आखिरी मकान, आश्रम, सभी कहानियां बम्बई में लिखी गयीं- या तो राकेश के तकाजों, या कमलेश्वर के आग्रह पर। नई कहानियां के लिए, सारिका के लिए। दे0 माया, अप्रैल 1977, सं0 आलोक मित्र, पृ0 64

2- दे0 सारिका- मार्च, 1970

मृत्यु-बोध, नये-पुराने का संघर्ष, अपने ही लोगों और परिवेश के बीच का अजनबीपन, सामाजिक प्रतिबन्धनों से आहत एवं कुण्ठित व्यक्ति की जटिल मानसिकता, सामाजिक रूढ़ि-विमुखता, समाज के मुखौटों का पर्दाफाश के साथ ही प्रगतिशील मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा करना आदि कतिपय ऐसे ही भाव-बोधों या वस्तु-सूत्रों की अनुगूंज इनकी कहानियों में सुनाई देती है। इस संदर्भ में डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी का कथन सार्थक ही है - "डा0 भारती ने जीवन के बदलते हुए रूपों को निकट से देखा है।"[1] ऊपर उद्धरित कथन की दृष्टि से 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह की 'चांद और टूटे हुए लोग' 'मुर्दा ईश्वर', 'धुंआ', 'मरीज नं0 7' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी-संग्रह की चारों कहानियां 'गुलकी बन्नो' 'सावित्री नं0 2', 'यह मेरे लिये नहीं' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' आदि कहानियां देखी जा सकती हैं।

यहां यह न भूलना होगा कि डा0 भारती जी मूलत: रोमाण्टिक प्रकृति के कवि हैं। उनका स्वच्छंद कल्पना प्रिय कवि हृदय कहीं जीवन के प्रति आस्थावादी दृष्टिकोण में कटु वास्तविकताओं से हटकर एक भावुकता-विह्वलित रूमानी भाव-भूमि की ओर पलायन करता है। इनकी अधिकांश कहानियों को आधुनिक कहानियों से अलगा देता है। इसका मुख्य कारण है जीवन के यथार्थ परिवेश से उनकी रूमानीयत से आक्रान्त रचना व्यक्तित्व या रचनात्मक मानसिकता की खींचतान। डा0 परमानंद श्रीवास्तव के शब्दों में - "इन्हें आज की कहानियों से अलग रखकर परखने में कोई कठिनाई नहीं है क्योंकि यद्यपि इनका वर्ण्य-विषय मनुष्य की नियति की जटिलताओं का रहस्योद्घाटन है पर इनमें

1- दे0 'द्वितीय महासमरोत्तर हिन्दी साहित्य' पृ0 175

'आस्था', 'मोह', 'करुणा', 'अवसाद', 'आत्मीयता' जैसे शब्द पूरी तरह निरर्थक नहीं सिद्ध हुए हैं। कहानियों में भारती का रोमानी-कवि स्वभाव अलग ही मौजूद है"[1] इसी तथ्य को इंगित करते हुए धनंजय वर्मा जी का कथन है - "जो रोमांटिक चेतना उनकी शुरू में थी वही अब भी है और वही उनके रचनात्मक व्यक्तित्व की रीढ़ है। ऐसा नहीं कि उनका लेखन सामाजिक चेतना विहीन है, वही तो उनके लेखन में 'एडवेंचर' और विद्रोह के स्वर देती है मगर रोमांटिक चेतना के ही कारण उनकी सामाजिक चेतना, उनका विद्रोह और 'एडवेंचर' अन्तत: व्यर्थता की अनुभूति जगाता है और एक उदासी, धुन्ध और निषेधात्मकता उनके सारे लेखन से उभरती नजर आती है। इसीलिए वह जितना सम सामयिक है उतना आधुनिक नहीं।"[2] तथाकथित रोमांटिक अंदाज 'चांद और टूटे हुए लोग' की रोमांटिक कल्पनापरक कहानियों में तो संपूर्णतया उभरकर आया है किन्तु इनके अतिरिक्त जीवन की ठोस-भाव-भूमि को छूनेवाली कहानियों में भी अपना स्थान ढूंढ लिया है। उदाहरण के लिए 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी का दीनू मां से, ईश्वर से तथा 'पुराने मकान के मोह' से आस्थाहीन होकर भी अंतत: उसमें कहीं रूमानी भरी संवेदनशीलता एवं भावुकता सन्निहित है। "इस पृथ्वी के परे अनन्त आकाश में कहीं एक विराट सूर्य उग रहा है, आकाश में धीरे धीरे चढ़ रहा है ताकि रोशनी का यहपंख उसके कमरे में उसके सीलन भरे फर्श पर थाली में भरे गंगाजल सा कांपे।"[3] 'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी के मुंशी जी भी सामाजिक प्रतिबंधनों से आहत हो अपने नये प्रेम-सम्बंधों को सामाजिक स्थिति तक नहीं पहुंचा पाते। इस स्थिति में उनका पू पराजित विद्रोह बद्रीनाथ की यात्रा-भूमि में खो जाता है। जहां 'बरफ, बियाबान बरफ।----कहीं कोई चिड़िया तक पंख नहीं मारती थी'[4]।"6

1- दे0 हिन्दी साहित्यकोश(1970) पृ0 156

2- वही- पृ0 162

3- बन्द गली का आखिरी मकान' की 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी;पृ058

4- वही- संग्रह 'बन्द गली0 पृ0 135

'सावित्री नम्बर-2' की सावित्री भी अपने दाम्पत्य जीवन की असह्य वेदना के लिए मृत्यु और जीवन के बीच साँसें गिन रही है। उसमें अपने पति के प्रति प्रत्याक्रमण की भावना के होते हुए भी जीने का एक निरर्थक क्रम बना रहता है। आज के पति-पत्नी के बीच टूटते संदर्भों को स्पष्ट करने के लिए मिथकीय सावित्री के गल्प के आलोक में किया गया उसकी घुटी हुई करुण स्थिति का अंकन तथाकथित पराजित विद्रोह को ही द्योतित करता है - "पर मेरे लिए कोई लड़े तो किससे। मेरे लिए तो न जिन्दगी है न मौत। है एक तीसरे प्रकार की स्थिति, एक निरर्थक क्रम में बीतते जाते क्षण जो कहीं भी तो नहीं ले जाते।"[1]

अतः यह कहना अनुचित न होगा कि कहानी प्रारंभ में व्यक्ति-जीवन की जिस जटिल अन्तर्व्यथा को लेकर विकसित होते चलती है अन्ततोगत्वा उस मनःस्थिति से मुक्ति के लिए अथवा अपनी नई चेतना को प्रतिष्ठित करने के लिए कोई सुस्पष्ट सामाजिक विद्रोह की रेखा को उजागर नहीं कर पाती। तात्पर्य यह है कि इन कहानियों में आधुनिक प्रतिबद्धता के नये स्वर होने पर भी लेखक का संवेदनाशील रूमानी लगाव उन्हें कहीं बांधे रखता है। यही कारण है कि परित्यक्त और प्रताड़ित गुलकी बन्नो की कसाई पति के घर वापसी, इन्दन्नमम की दार्शनिक आस्था में समाप्त होनेवाला दीनू का विद्रोह, विजातीय राधों के ग्रहणार्थ मुंशी जी का आहत पौरुष आदि ऐसी ही कुछ रुकावटें हैं जिनसे इन कहानियों के वस्तु-बोध को परखा जा सकता है। उक्त तथ्य की प्रतीति डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी के शब्दों में की जा सकती है - "व्यक्ति और समाज के विविध पक्षों का उन्होंने उद्घाटन तो किया किन्तु आस्था-अनास्था, आशा-निराशा, विद्रोह और उदासीनता आदि के बीच डूबते-उतराते व्यक्ति को अन्ततोगत्वा नियति के हाथों सौंप देते हैं।"[2] इसी तथ्य की ओर दृष्टिपात करते हुए अश्क जी ने भी डा0 भारती जी को पुराने व नये

1- वही- 'सावित्री नम्बर दो' - पृ0 26

2- 'द्वितीय समरोत्तर हिन्दी साहित्य' - पृ0 176

के बीच सेतु का काम करनेवाले उन कहानी-लेखकों में अन्तर्मुक्त किया है कि जिनके वहां पुराने को नये तक पहुंचाया गया है।[1]

'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह की कतिपय कहानियों में भी तथा-कथित तथ्य को कथ्य के तौर पर देखा जा सकता है। समाज की विषमता के विरुद्ध विद्रोह और विध्वंस का शंख फूंकनेवाला 'भूखा ईश्वर'[2] का विद्रोह अंतत: हाथों की हथकड़ियों में और सेठों के कड़े नियंत्रणों में ही तड़पकर रह जाता है। लेखक ने अन्य कहानियों में मानव-हृदय को आंसुओं से भर देनेवाली क्रूर नियति से ग्रथित निम्न-वर्गीय जीवन की ट्रेजडी का यथार्थांकन किया है। लेखक का कथ्य रहा है कि जब तक गरीबों के आंसुओं की उपेक्षा होती रहेगी, इन्सानियत का अभाव रहेगा और इसके विषाक्त परिणाम स्वरूप किसी ओर से किये जानेवाले विद्रोह को रास्ता नहीं मिल पायेगा तब तक सच्ची मानवता का मूल्यांकन संभव नहीं। फिर चाहे भूख और एनार्की की आग में झुलसते हुए वेश्याओं के बच्चे हों[3], बेकारी और बीमारी से मर जानेवाला 'बेला' का पति हो,[4] भूख से बच्चे को बेचनेवाली 'रामी' हो[5], अकाल पड़ता रहेगा, कफन की चोरी होती रहेगी[6], जिन्दे आदमी के गोश्त को सियार बड़ी दिलचस्पी से खाता रहेगा।[7]

इस प्रकार इनकी कहानियों के अध्ययन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि

1- दे0 लहर, जनवरी-फरवरी, 1972, पृ0 63

2- चांद और टूटे हुए लोग- भूखा ईश्वर कहानी

3- दे0 कहानी 'धुंआ', 4- बीमारियां

5- 'एक बच्चे की कीमत'

6- 'कफन चोर'

7- 'आदमी का गोश्त'

जब कहानीकार जीवन-जगत् की अपराजेय स्थितियों से स्वयं को हताश और विवश पाता है तब यह अवश्य है कि वह ऐसे क्षणों में किसी दार्शनिक आस्थावादी विचारों की गहराइयों में खो जानेवाली किसी तन्मयता अथवा रूमानी भाव-बोध की रंगमयता में अपनी अपना निवास खोजनेवाली दृष्टि-प्रिया के लोह-कर्षणीय गुरुत्वाकर्षण की ओर अपने को सहज ही खींचा चला जाता हुआ पाता है। ऐसी स्थितियों में पाठकों को अवश्य ही कुछ समय के लिए ये कहानियाँ थपकियां देकर सुला देनेवाली लगें, किन्तु उस ऊंघ के उड़ते ही उन्हें कहानियों में अपनी आवाज सुनाई देने लगती है - श्री गिरधर गोपाल जी के शब्दों में इस बात को और भी अधिक स्पष्ट रूप से कहना चाहें तो यह कह सकते हैं कि " जहां तक उसकी कहानियों का प्रश्न है, भाषा की रंगमयता और कल्पना की अलमस्त उडान के कारण ये कहानियां किसी दूसरे लोक की लगेंगी। किन्तु थोड़ी देर बाद खुमारी ढलते वक्त आपके ही प्राणों से आवाज आएगी, नहीं। यह इसी लोक की बात है। ये इन्द्रधनुष सी दूर होते हुए भी शबनम सी पास हैं। धरती के ही बादलों पर भारती की कला ने इन्द्रधनुष सजाए हैं। ये इन्द्रधनुष आकाश के केवल इसलिए लगते हैं कि इन्होंने आकाश को भी जगमगा दिया है। -----भारती की कहानियां पढ़ने के उपरान्त आपको कहानीकार की आवाज में अपनी प्रतिध्वनि मिलेगी। और यही है इन कथाओं और इनके कथाकार की सबसे बड़ी सफलता। रूप, यौवन, प्रेम, नारी, निर्वाण, देश, स्वर्ग, ईश्वर, समाज सभी के विषय में उसने अपना दृष्टिकोण सामने रखा है और इस कुशलता से रखा है कि आप उसे अपनाने से इनकार नहीं कर सकते।"[1]

वस्तुत: उनकी कहानियों में प्रेमपरक रूमानी कल्पना के होते हुए भी उनमें मानसिक कुण्ठाओं के स्तर पर प्रेम की यथार्थता का रूप उभर आया है। भाव-बोध के

1- डा0 भारती क0 सं0 'स्वर्ग और पृथ्वी' (सं0 2006) परिचय-पृ0 4-5

इसी बिन्दु से उनकी कहानियों में विकास की नयी चेतना के दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से 1955 के बाद लिखी गई कहानियों की विकासात्मक चेतना को देखा जा सकता है। यही मोड़ इनकी कहानियों के कि विकास का सूचक है जो उन्हें एक प्रगतिशील कहानीकार के रूप में प्रतिष्ठित कर देता है। उनकी आरम्भिक कहानियों में भोगे हुए एहसास की सच्चाई प्रकट हुई है और यही चेतना विकसित होकर उनकी बाद की कहानियों में दिखाई पड़ती है। आरम्भ की कुछ भावात्मक कहानियों को छोड़कर शेष सभी कहानियों में पीड़ित और उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति परिलक्षित होती है, जो पाठक की संवेदना का विषय स्वयं बन जाती है। ----वस्तुत: यथार्थपरक कहानियों से ही धर्मवी धर्मवीर भारती का सही कथाकार-रूप उभरता है। कुछ लोग 'चांद और टूटे हुए लोग' को उनकी अपरिपक्व समय की रचना मानते हैं, जबकि उसके प्रथम खण्ड की कम से कम चार कहानियां कथ्य और शिल्प की दृष्टि से उच्च स्तर की है और 'गुलकी बन्नो, 'सावित्री नम्बर-दो', 'यह मेरे लिए नहीं', तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' निश्चय ही प्रथम कोटि की रचनाएं हैं।[1]

कहानियों का वर्गीकरण :

विषय-वस्तु या वर्ण्य-विषय की दृष्टि से डा0 भारती जी की कहानियों को मुख्यतया चार भागों में विभाजित किया जा सकता है। यथा-(1) आदर्शपरक कहानियां (2) प्रेम-भावना की द्वन्द्वपरक कहानियां (3) कल्पनामिश्रित यथार्थपरक कहानियां तथा (4) सामाजिक यथार्थपरक कहानियां। 'चांद और टूटे हुए लोग' संग्रह की 'हिरनाकुश का बेटा' और 'युवराज' आदि कहानियों में गांधीवादी आदर्श भावना का हास्य-व्यंग्यात्मक चित्रण अंकित किया गया है। प्रेम भावना की द्वन्द्वपरक कहानियों में इसी संग्रह की 'पूजा', 'स्वप्न श्री और श्री रेखा', 'शिंजिनी', 'कला:एक मृत्यु चिन्ह', 'नारी और निर्वाण' तथा 'तारा और किरण' आदि कहानियां

1- माया, अप्रैल, 1977, देवीप्रसाद कुंवर 'धर्मवीर भारती की कहानियां :भोगी हुई जिन्दगी का यथार्थ' शीर्षक लेख- पृ0 55

उल्लेखनीय हैं। उक्त कहानियों में पवित्रतावादी या अलौकिक प्रेम एवं शारीरिक प्रेम के बीच द्वन्द्व की रेखाओं को उभारकर अंतत: वास्तविक या मिट्टी के प्रेम की विजय का स्वर ध्वनित कियागया है। नारी प्रेम से घृणा कर कला को ही जीवन का सर्वस्व ज्ञापित करनेवाला किंजल्क भी अंतत: यह स्वीकार कर लेता है कि "मैं आज से जीवन के आरोह-अवरोह का स्वागत करता हूं। मैं साधना को प्यार करता हूं। मैं गुनाहों की रंगीनियों को भी प्यार करता हूं। ----संयम भी सत्य है और वासना भी।"[1] इसी प्रकार `चांद और टूटे हुए लोग` शीर्षक कहानी में भी प्रेम के अवास्तविक रूप का अंकन करते हुए अंतत: उसे आज की सामाजिक परिस्थितियों के टूटते-जूटते सम्बंधों की वास्तविकता के स्तर पर देखा गया है।

कल्पना मिश्रित यथार्थपरक कहानी की दृष्टि से `आदमी का गोश्त`, `कमल और मुर्दे,` तथा ऊपर कथित सभी कहानियों में लेखक की रोमांटिक कल्पना यथार्थ के पंख पर उड़ी है। शेष सामाजिक यथार्थपरक कहानियों में `बन्द गली का आखिरी मकान` कहानी संग्रह की चारों कहानियां-`गुलकी बन्नो`, `सावित्री नं0-2, `यह मेरे लिये नहीं` तथा `बन्द गली का आखिरी मकान` उल्लेखनीय हैं।

ऊपर चर्चित कहानियों के वस्तु-बोध से यह प्रतीत हो जाता है कि इनमें कल्पना और यथार्थ का मणिकांचन योग हो पाया है। गल्प में सत्य बोध की प्रतीति करा देनेवाली विदग्धता प्राप्त क्षमता-कुशलता ही इन्हें कलात्मक रचना-कसाव की दृष्टि से श्रेष्ठ कोटि की कहानियों में परिगणित कर देती है।

शिल्पगत विविध आयाम- वस्तु -विधान :

डा0 भारती जी की कहानियां आज के व्यक्ति की द्विधाग्रस्त मन:स्थितियों के विश्लेषण को मर्मस्पर्शी भावों की पृष्ठभूमि में बड़े ही कलात्मक ढंग से

1- चांद और0 `शिंजिनी` कहानी- पृ0 208

प्रस्तुत करती हैं। अत: इन कहानियों के वस्तु-विन्यास को तदानुकूल रचनात्मक सौष्ठव तो बहुलता से प्राप्त हो सका है किन्तु इनमें क्रमबद्धता के सूत्रों को आसानी से नहीं पकड़ा जा सकता। आज की कहानी के स्वरूप बोध को स्पष्ट करते हुए श्री नरेश मेहता ने कहा है - "आज की कहानी संकेत करती है, वह फार्मूला या सोद्देश्य कहानी-कला से आगे बढ़ चुकी है।"[1] डा० भारती जी की कहानियों के कथानक को भी देखने से ज्ञात होता है कि वह सीधा और सपाट न होकर प्राय: संश्लिष्ट और बिखरा हुआ है। अत: यह कहना असमीचीन न होगा कि इन कहानियों का कथानक स्थूल व घटनापरक ब्यौरे नहीं खींचता वरन् मानसिक भूमि की जटिलतर पर्तों को उजागर करते चलने के कारण प्राय: सूक्ष्मता की रेखाओं पर अवलम्बित है। ऐसी कहानियाँ आकार में चाहे अधिक लम्बी या उपन्यास-नुमा क्यों न हों किन्तु उनका कथानक बाहरी व स्थूल न होकर मनोद्वन्द्व के अन्तवर्ती परिवेश को ही अधिक रूप से प्रतिध्वनित करता है। इस दृष्टि से 'बंद गली का आखिरी मकान' संग्रह की अंतिम तीन कहानियाँ 'सावित्री नं0-2', 'यह मेरे लिये नहीं' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' दृष्टव्य है।

इसी प्रकार 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह की अधिकांश कहानियों के कथा-सूत्र अपने प्रारम्भ एवं मध्य तक की विकासात्मक अवस्था में बिखरे हुए प्रतीत होते हैं किन्तु अंत में आकर अपने मूल कथ्य को स्पष्ट कर देते हैं। उदाहरण के लिए 'हिरनाकुश का बेटा', 'धुंआ' 'कला : एक मृत्यु चिन्ह' तथा 'चांद और टूटे हुए लोग' आदि कहानियों को इस दृष्टि से देखा जा सकता है। कथा-वस्तु का विकास किसी भाव या मन:स्थिति की द्विधाग्रस्त स्थिति में प्राय: ध्वन्यात्मक अभिव्यंजना के रूप में होता है। इसका कारण है डा0 भारती जी की

1- नरेश मेहता 'तथापि' प्र0 सं0 1961, निवेदन- पृ0 1

रोमांटिक कथन-भंगिमा युक्त कलात्मक शैली-प्रियता। अत: इन कहानियों की ध्वन्यात्मक अभिव्यंजना या कलात्मक कथन-भंगिमा को न समझ पाने के कारण ही कहीं बार पाठकों को इन कहानियों का वस्तु-विन्यास दुरुहता व जटिलता से ग्रसित प्रतीत होने लगता है। किन्तु अंतत: उक्त जटिलता के भाव-सूत्रों के स्पष्ट होते ही वह उनके रस या कथ्य तक पहुंच जाता है। इसी बिन्दु पर आकर कहानियों के बिखरे हुए सूत्र एकान्वित होकर पाठकों को अपनी विश्वसनीयता एवं प्रभावात्मकता के गुणों का एहसास भी करा देते हैं। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी ने इसी तथ्य को अनुमोदित करते हुए कहा है कि "महत्वपूर्ण वे कहानियां हैं जो सामाजिक संदर्भों में लिखी गई हैं। जब आत्मपरक ढंग से संदर्भों का विश्लेषण किया गया तो वे कहानियां बहुत सूक्ष्म हो गई हैं और फिर उनमें अजनबीपन, अकेलापन, कुण्ठा, आस्थाहीनता, अविश्वास और विभ्रान्तता आ गई है। सामाजिक संदर्भों में पीढ़ियों का संघर्ष धर्मवीर भारती की 'यह मेरे लिये नहीं' आदि कहानियों में अच्छा उभरा है।"[1]

कथा-वस्तु की संक्षिप्तता एवं प्रभावान्विति के लिये लेखक ने सम्प्रेषणशील अभिव्यंजनात्मक शैली का माध्यम ग्रहण किया है। उनकी कहानियों में प्राप्त संकेतात्मक शैली विभिन्न भावों, और विचारों के कथा-सूत्रों को एक बिम्बात्मक एवं प्रतीकात्मक रूप प्रदान कर देती है। 'धुंआ', 'चांद और टूटे हुए लोग', 'कमल और मुर्दे', 'भूखा ईश्वर', 'आदमी की गोश्त' तथा 'सावित्री नं०-2' आदि ऐसी ही कहानियां हैं। 'भूखा ईश्वर' अपने प्रतीकात्मक भाव-बोध के स्तर पर आज के टूटे हुए चेतना-आहत व्यक्ति के जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।

1- दे० 'द्वितीय महासमरोत्तर हिन्दी साहित्य- पृ० 162

उपर्युक्त तथ्यों के आधार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि डा0 भारती जी की कहानियों में मानव मन की जटिलतर गुत्थियों एवं कुण्ठाओं का मनोवैज्ञानिक चित्रांकन किया गया है। अतएव इनमें वस्तु-विषय की वर्णनात्मक स्थूलता की भरमार नहीं है। संकेतों, प्रतीकों, बिम्बों एवं उत्तेजनात्मक अन्तर्प्रलापों के द्वारा कहानी का कलेवर बड़ा ही सुघर बन पाया है। उनके रोमांटिक भावुकता एवं संवेदनाशील कवि-स्वभाव ने अतिशय बौद्धिकता एवं वैयक्तिकता के तत्वों को कथानक में हस्तक्षेप नहीं करने दिया, प्रत्युत इससे कथानक की सम्प्रेषणाशीलता और भी बढ़ गई है।

अस्तु उक्त कहानियां 'नई कहानी' के स्तर को सहज में ही आत्मसात् कर लेती है। शीर्षक भी प्रतीकात्मकता व संकेतात्मकता लिये हुए हैं जो आज के जीवन की आन्तरिक व्यथा के बोधक हैं।

पात्र एवं चरित्र-चित्रण :

डा0 भारती जी की कहानियों के अधिकतर पात्र निम्न-मध्यवर्गीय जीवन केसाधारण पात्र हैं। भोगी हुई जिन्दगी के यथार्थ की मिट्टी से निर्मित होने के कारण ये पात्र जीवन की विसंगतियों के आघात से टूटे हुए, उखड़े हुए व भटके हुए लोगों की ट्रेजिक कामेडी के सही दस्तावेज हैं। डा0 भारती ने अपने पात्रों की कटु पीडाओं को, भीतर ही भीतर टूटकर घुटती हुई व्यथा-कुण्ठित अवरुद्ध सांसों को अपने आंसुओं की लौनी लौनी स्याही से चित्रांकित किया है। उनमें घास की कलम नहीं, सांस की कलम बोल उठी है। उनमें किसी प्रकार का आरोपित दर्शन अथवा किसी प्रकार के आदर्श की पोज़ बनाकर हुडकने की आवाज नहीं है, उनमें अपना रंग है अपनी गंध है। इस बात को स्वयं भारती ने कहा है - 'हमारे उस कीचड़ भरी गलियों वाले मुहल्ले में आम

नहीं था, कडुआ नीम था। मगर चैत में जब फूलता था और कडवाहट-बसी एक ताजी सुगन्ध उन फूलों की, मुहल्ले की हवा में बस जाती थी, तब जो नशा छा जाता था, मुहल्ले के डिप्टी लाला पर, गोरी मुखिया इस पर, खूंटी चोर और उसकी पतली-छरहरी औरत छटंकी कहारिन पर, सुबह-सुबह किशन उस्ताद के घर में बजने वाली सारंगी के सुरों पर और मटकी, मिरवा, गुलकी और मुन्ना पर, उस नशे की व्याख्या न तो मैं मार्क्स या स्टालिन की भाषा में कर सकता हूं, न सार्त्र या सोल्जेनित्सिन की भाषा में।`[1] अत: स्पष्ट है कि भारती ने अपने पात्रों के माध्यम से आज विखण्डित जीवन की उस कडवाहट को गंधायित किया है जो चैत-वैसाख में फलते-फूलते नीम के फूलों की ताजी और नशीली सुगंध में होती है।

अपने पात्रों के द्वारा भारती ने जिन्दगी के ऊपरी खोल के नीचे कुलबुलाता हुआ सर्वग्रासी अंधेरा, दुख और निराशा तथा टूटन की परत-दरपरत ट्रेजड़ी के नये-नये आयामों को अनावृत किया है। इसके साथ ही डंसकर उलट जानेवाली नागिन की विषाक्त पीड़ा को सहते हुए भी उक्त पात्र अपनी विसंगतियों के मध्य भी जीवन-संगति के लिए नये सूत्रों की तलाश करते हुए परिलक्षित होते हैं। उनमें जीवन की अदम्यकांक्षा तो है किन्तु घर और बाहर की विषम परिस्थितियां उन्हें कहीं का नहीं रखतीं। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी के शब्दों में कहा जा सकता है - `उन्होंने प्रगतिशील आधार भूमि पर आधुनिक जीवन की करुणा, व्यथा एवं विसंगतियों का अनूठा चित्रण किया है। भारती की कहानियों में वैराश्य एवं कुण्ठा की सतही दीवारों की पृष्ठभूमि में जीवन जीने की अदम्य आकांक्षा, अपूर्व जिजीविषा, आस्था एवं संकल्प का संबल प्राप्त होता है। उनकी हाल की प्रकाशित कहानी `यह मेरे लिये नहीं` में उन्होंने मुख्य पात्र दीनू के माध्यम द्वारा एक

1- माया, अप्रैल 1977, `मेरी कथा यात्रा`, पृ0 61

विराट पृष्ठभूमि को अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से अत्यन्त कुशलतापूर्वक समेटा है और उसमें आज की समूची नई पीढ़ी की ट्रेजडी, पीढ़ियों का संघर्ष मन:स्थितियों की विषमताएं एवं भाव-विचारों का संतुलन-असंतुलन स्पष्टतया उभर कर सामने आया है। इस या दूसरी अन्य कहानियों की प्रमुख विशेषता उनका यथार्थ और संवेदनाशील आधार पर पात्रों का पूर्ण सहानुभूतिपरक दृष्टिकोण से चित्रण है। इतना होने के बावजूद भारती उनमें कहीं 'इन्वाल्व' नहीं होते और पूर्ण तटस्थता एवं निर्वैयक्तिकता के साथ चित्रण करते हैं - यह एक बड़ी चीज है।"[1] अत: इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि डा0 भारती जी की कहानियों के पात्र जीवन-जगत की प्रतिकूल स्थितियों में भी अपनी जिजीविषा एवं मानवीय मूल्यों की प्रगतिशील संचेतना के प्रति अपनी गहरी आस्था को बनाये रखते हैं। इस दृष्टि से 'गुलकी बन्नो' की 'गुलकी', 'सावित्री नम्बर -2 की 'सावित्री', 'यह मेरे लिये नहीं' का दीनू, 'बन्द गली का आखिरी मकान' के 'मुंशी जी' व 'मूखा ईश्वर' कहानी का ईश्वर जैसे पात्र प्राय: उल्लेखनीय हैं। 'मरीज नं0 सात' कहानी में भी पात्रों ने मृत्यु एवं भय को बहुत निकट से देखा है किन्तु उन्हें भी कहीं जिजीविषा और आस्था की रेशमडोर टिकाये रखती है। मूखा ईश्वर का आज की आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था के प्रति किया गया विद्रोह भी उसी की आस्था के संबल का परिणाम है। इसी प्रकार 'बन्द गली का आखिरी मकान' के मुंशी जी यद्यपि सामाजिक परिस्थितियों के बीच अपनी विवशता को अनुभूत करते हैं किन्तु वे परिस्थितियों से हारे हुए नहीं हैं। उक्त पात्र सामान्य या साधारण कोटि के होने पर भी कथ्य के धरातल पर प्रतीकात्मक हैं। कुछ व्यंग्य-चरित्र-पात्र भी डा0 भारती जी की कहानियों में उपलब्ध होते हैं। 'युवराज' कहानी का 'युवराज', 'अगला अवतार' के सिद्धयोगी 'पूरन स्वामी' तथा स्वयं को कल्कि भगवान का अवतार घोषित करनेवाले विचित्र वेषधारी 'बाबाजी', तथा 'यह मेरे लिये नहीं'

1- डा0 लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- 'द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ0 175-76

कहानी के प्रख्यात भजनीक 'वेद वागीश जी' ऐसे ही व्यंग्य चरित्र पात्र हैं। कला और प्रेम सम्बंधी कहानियों के पात्र प्रारंभ में कला के उच्चतम आदर्श के शिखर पर अवस्थित रहते हैं किन्तु अंतत: जीवन के यथार्थ के साथ समझौता कर लेते हैं।

समग्र रूप से देखने पर यह ज्ञात होता है कि डा0 भारती जी की कहानियों के पात्र आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व के बीच रहकर अपनी भावुकता एवं अन्तर्द्वन्द्व की अनेकविध रेखाओं को उद्घाटित करते रहते हैं।

उपर्युक्त कहानियों के पात्रों को चरित्र-शिल्प या विधि की दृष्टि से देखने के लिए निम्नस्थ रूप से विचार किया जा सकता है।

डा0 भारती जी की अधिकांश कहानियां प्राय: चरित्र-प्रधान हैं। पात्रों के चरित्रांकन के लिए उक्त कहानियों में मुख्य रूप से जिन शैलियों का प्रयोग किया गया है वे हैं -(1) संवादात्मक(2) परिचयात्मक या विवरणात्मक शैली(3) नाटकीय शैली (4) आत्मकथात्मक शैली(5) अन्तर्विवाद शैली तथा (6) संकेतात्मक शैली।

इनमें संवादात्मक या अभिनयात्मक, और आत्मकथात्मक विधियां प्राय: एक ही वर्ग की हैं। इन्हें चरित्र-चित्रण की प्रत्यक्ष विधि के रूप में गृहीत किया जाता है। प्रभाव-व्यंजना की दृष्टि से उक्त विधियों का अधिक महत्व है। इसी प्रकार विवरणात्मक, परिचयात्मक और मनोविश्लेषणपरक विधियों को चरित्र-चित्रण की अप्रत्यक्ष शैली या विधि माना गया है। इनमें मुख्य रूप से पात्रों का चरित्रांकन 'तृतीय पुरुष' के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

अस्तु, चरित्र-शिल्प की उक्त शैलियों का एक-एक उदाहरण यहां प्रस्तुतव्य होगा।

(1) संवादात्मक या अभिनयात्मक शैली :

इस शैली का अधिकतर प्रयोग डा0 भारती जी की कहानियों में किया गया

है। इसमें पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप द्वारा चरित्रोद्घाटन कियाजाता है, कभी-कभी उनसे तीसरे पात्र का चरित्र भी उद्घाटित हो जाता है। इस दृष्टि से 'हिरनाकुश का बेटा,' 'कुलटा', 'यह मेरे लिए नहीं', 'युवराज', 'गुल की बन्नो', आदि कहानियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके साथ ही प्रेम और कलावादी भावना पर आधारित 'स्वप्नश्री और श्री रेखा', 'पूजा', 'शिंजिनी' तथा 'कला: एक मृत्यु-चिन्ह' आदि कहानियों के वार्तालापों में भी इस प्रकार का चरित्रांकन अच्छी तरह से उभरकर आया है। 'शिंजिनी' कहानी से एक उदाहरण देखिये -

"अच्छा, किंजल्क तुम्हें अपने जीवन पर संतोष है?"

उसने किंजल्क की नजरों पर अपनी किरणोंवाली नजरें डालकर पूछा।

"क्यों? असंतोष क्यों होता? मैंने कभी संतोष की कामना नहीं की शिंजिनी, तो असंतोष का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है?"

"मैं देवता से नहीं, किंजल्क से पूछ रही हूं। क्यावह सदा से प्यास का उपासक रहा है?"

"हां, शिंजिनी। उसे कभी भी तृप्ति में कोई आकर्षण ही नहीं दीखा।"

"आश्चर्य है, किंजल्क। तुम्हें तृप्ति से इतना विराग क्यों है? क्या इसलिए कि वह क्षणिक है?"

"हां, इसलिए कि क्षणिक सत्य नहीं होता। मैं देवता हूं, मेरा आधार सत्य है।"

"तुम गलत सोचते हो किंजल्क। सत्य की माप समय और काल की सीमाओं से नहीं होती है। तृप्ति, प्यार, मोह, वासना केवल इसलिए असत्य नहीं कहे जा सकते कि वे क्षणिक हैं।"[1]

1- चांद और टूटे हुए लोग - (द्वि0 सं0 1967) पृ0 200-201

(2) परिचयात्मक या विवरणात्मक शैली :

लेखक ने स्वयं भी अपनी कहानियों में पात्रों के चरित्र का परिचय दिया है। यह परिचय किसी किसी कहानियों में मनोविश्लेषण परक शैली का रूप भी ग्रहण कर लेता है। इस दृष्टि से 'हिरनाकुस का बेटा', 'कुलटा', 'चांद और टूटे हुए लोग', 'यह मेरे लिए नहीं', 'गुलकी बन्नो', तथा 'बंद गली का आखिरी मकान' आदि कहानियों को देखा जा सकता है। 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी में लेखक ने दीनू की बाह्य-भीतर की चारित्रिक रेखाओं को अंकित किया है - 'दीनू की उम्र ही क्या थी तब। मुश्किल से सत्रह-अट्ठारह बरस। फिर भी उसे यह लगने लगा था कि बाप की निशानी सिर्फ यह मकान है। वह नहीं। इस उम्र में वह क्लास का सबसे तेज सबसे गरीब, सबसे दुबला, सबसे कम उम्र लड़का है। और किताबें उसे उधार मांगनी पड़ती हैं और कपड़े उसे घर में साबुन से पछाड़ कर पहनने पड़ते हैं और शामें ट्यूशनों में बितानी पड़ती हैं और मां है कि निचुड कर बूंद-बूंद इकट्ठा होनेवाले पैसे को (जिससे वह एक्जामिनेशन फीस और अगले साल की एडमिशन फीस देना चाहता है) फटी दीवारों में फोंक आती हैं। सिर्फ इस सुख को महसूस करने को कि उन्होंने पाई-पाई चुका दी- मजदूर लगने जरूरी हैं, चिट्ठा बंटना जरूरी है।'[1]

(3) आत्मकथात्मक शैली :

चरित्र-चित्रण की इस प्रकार की शैली में प्राय: पात्र 'मैं' वाचक सार्वनामिक शब्दों का प्रयोग कियाजाता है। पात्र द्वारा स्वयं का आत्मविश्लेषण होने के कारण इससे मनोवैज्ञानिक चरित्रांकन की रेखाओं के उभरने की अधिकाधिक संभावना रहती है। इस दृष्टि से 'चांद और टूटे हुए लोग' कहानी संग्रह की 'धुआं', 'अगला अवतार', 'पूजा', 'कल: एक मृत्यु-चिन्ह' तथा 'बंद गली का आखिरी मकान' कहानीसंग्रह की 'सावित्री नम्बर दो' आदि कहानियां उदाहरणीय हैं। 'सावित्री नम्बर-दो' शीर्षक कहानी से इसका एक उदाहरण देखिए- 'मैं सुन्दर नहीं थी पर उनका प्यार पाकर मुझे अपनी देहयष्टि पर गुमान था। मोर की तरह पंख

1- वही- पृ0 53

फैलाकर ठुमकती थी सारे घर में। मुहल्ले की दूसरी बहुएं मुझे कोसती रहती थीं, मैं सजी रहती थी और वे रीझे रहते थे। सोचती थी इसी तरह सजी-संवरी इनकी गोद में ही एक दिन आंखें मूंद लूं।"[1] इसी आत्मकथात्मक शैली में मनोवैज्ञानिक चरित्रोद्घाटक 'अन्तर्विवाद प्रधान' शैली का एक और रूप भी उभर आया है। इसमें पात्रों के मन में घटित वस्तु या अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त किया जाता है। 'गुनाहों का देवता' उपन्यास में जड़ शीशे को बोलता बतलाकर चंदर के मनोद्वन्द्व को उद्घाटित किया गया है। 'सावित्री नम्बर -दो' में सावित्री की मनोव्यथा को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए काल्पनिक पात्र 'सत्यवान' और 'सावित्री' के पात्रों की योजना की गई है ताकि पाठक सावित्री के अन्तर्द्वन्द्व को भलीभांति समझ सके। 'अनगिनत नासूरों सा मुझे अन्दर से दाण-दाण खाये जाता है। जो न जिन्दगी में लौट सके, न पूरी तरह मौत जिसे बांध सके, जिन्दगी से वंचित होकर भी जिसे निष्क्रिय पड़े-पड़े हर चीज देखने, उसकी तह तक उतर कर उसकी असलियत जान लेने की अभिशाप भरी मजबूरी हो उसका अन्त में क्या होता है सत्यवान ? यह इस सावित्री के हीसाथक्यों हुआ ?"[2]

(4) मनोविश्लेषणात्मक शैली :

'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानी संग्रह की 'सावित्री नम्बर-दो', 'ह मेरे लिए नहीं' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' आदि कहानियों में पात्रों को अपने मनोविश्लेषण के लिए पर्याप्त समय मिल सका है। कहीं-कहीं स्वयं लेखक ने भी पात्रों के चरित्र की मनोवैज्ञानिक रेखाएं प्रस्तुत की है। कला और प्रेम की भावना पर आधारित कहानियों के विशेषकर पुरुषपात्रों में भी अन्तर्द्वन्द्व जनित मनोविश्लेषण उभर कर आया है। इसका एक उदाहरण दृष्टव्य है -

1- बन्द गली का आखिरी मकान (द्वि0 सं0 1973) कहानी-सावित्री नं0-दो) पृ0 27

2- वही- संग्रह - 'सावित्री नम्बर-दो' पृ0 26

लेकिन माँ के सुख का अलम् कहीं नहीं । दीनू जानता है कि अब एक पैसा नहीं बचा है। परसों ये गठरी -सन्दूक लेकर चल देंगी और छह महीने बाद फिर लौटेंगी । और फिर डिक्शनरी के नीचे वाली दराज में (जहां वह बचे हुए रुपये रखता है) हाथ डालेंगी, रुपये निकालेंगी, सावधानी से गिनेंगी, अपनी सिलाई वाली पिटरिया में सुई-डोरे और कतरनों के नीचे रख देंगी और दूसरे दिन उन्हें फर्श में दरार दिखाई देगी, उखड़े पलस्तर वाली दीवाल से नींव में पानी भरता नजर आयेगा, छत का दायां बाजू फूला नजर आयेगा और कहेंगी, "दीनू बेटा, जरा कालेज जाते समय चकलानीम होते हुए जाना, नज़ीर मिस्तरी से बोलना बहू जी ने बुलवाया है।" और बस दीनू को सामने की थाली ज़हर लगने लगेगी ।"[1]

कथोपकथन और भाषा-शैली :

कहानी में कथा-वस्तु, और चरित्र-चित्रण की भांति ही कथोपकथन या संवादों का भी महत्वपूर्ण स्थान है । इसके समुचित प्रयोग, द्वारा कहानीकार न केवल अपने पात्रों का चरित्रांकन ही करता है वरन् उसके माध्यम से कथा-विकास, वातावरण-नियोजना, तथा कहानी में उत्सुकता वा कुतूहलता जैसे अन्य गुणों की सृष्टि भी करता है । कहानी में कथोपकथन या संवाद-योजना जितनी पात्रानुकूल व प्रसंगों से गर्भित होगी उतनी हीवह श्रेष्ठ, स्वाभाविक एवं प्रभावोत्पादक होगी । ऐसे कथोपकथन कहानी में गत्यात्मकता पैदा कर उसे अधिक रोचक बनाते हैं ।

डा० भारती जी ने अपनी कहानियों में कथोपकथनों का खुलकर प्र उपयोग किया है । ये कथोपकथन पात्रानुकूल एवं प्रासंगिक कथा-सूत्रों से युक्त होने से बड़े ही मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक हैं । साथ हीपात्रों के छोटे-छोटे कथनोपकथनों में हास्य एवं व्यंग्य के वातावरण की सरस सृष्टि हो सकी है । अपने पक्ष का समर्थन और परपक्ष

1- वही- संग्रह 'यह मेरे लिए नहीं' - पृ0 52

खण्डन करते समय पात्रोचित कथोपकथनों में एक जोरदार भरी दलील, तर्क, व बौद्धिक दामता को भी देखा जा सकता है। `चांद और टूटे हुए लोग` कहानी संग्रह की `स्वप्न श्री और श्री रेखा`, `पूजा` `शिंजिनी`, `नारी और निर्वाण` आदि कहानियों के कथोपकथन प्राय: ऐसे ही हैं। संवादों में कुतूहलता द्वारा कहानी को रोचक बनाने की दृष्टि से `हरिनाकुस और उसका बेटा`, `अगला अवतार`, `कमल और मुर्दे`, तथा- `आदमी का गोश्त` आदि कहानियों के संवाद विशेष उल्लेखनीय हैं। इसका एक उदाहरण `अगला अवतार` शीर्षक कहानी से देखिए - जिसमें एक विचित्र वेशधारी बाबा के साथ लेखक और उनके मित्रों का संवाद चलता है -

"कहां जा रहे हैं महाप्रभु ?" मैंने पूछा।

"विश्व भ्रमण को। हम लोग शाधक हैं। संदेश देते हैं। ---पर संसार को यह नहीं मालूम कि भगवान का औतार हो गया।"

"हो गया।" मैंने ठण्डी सांस लेकर कहा -

"चलो बड़ी प्रतीक्षा थी। कहां हुआ महाराज ?"

मेरे साथी ने कड़ी निगाह से मेरी ओर देखा और बड़े विनय से पूछा-
"किस स्थान पर अवतरण हुआ स्वामी जी ?"

"फैजाबाद से ईशान कोण में, 12योजन दूर तलवरिया ग्राम में केशव घृत कल्कि शरीर, जय जगदीश हरे।"

"जय जगदीश हरे। कब हुआ ?"

"कब कहां ? - यह सब माया के वशीभूत होकर पूछते हो तुम लोग। अवतार देश और काल से परे होता है।"[1] इसी संवाद के अन्तर्गत पात्रानुकूल भाषा के साथ ही पात्र विशेष के गुण, स्वभाव, आचरण, विचार और बौद्धिक दामता, तर्क, दलील आदि जैसी बातों को भी देखा जा सकता है।

1- कहानी संग्रह- चांद और टूटे हुए लोग की `अगला अवतार` शीर्षक कहानी- पृ0 55

डा0 भारती जी की कहानियों में नाटकीय एवं हास्य-व्यंग्यात्मक, भावात्मक तथा मनोविश्लेषणात्मक, व सांकेतिक आदि जैसे कथोपकथनों के विविध रूप मिलते हैं। नाटकीय एवं हास्य-व्यंग्यात्मक कथोपकथनों के कारण कहानियाँ पाठकों के हृदय को सीधे छूकर अभीष्ट रस या प्रभाव की अनुभूति करा देती हैं। जहाँ कहानियों के संवादों में भावात्मक और मनोविश्लेषणात्मक प्रसंगों की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है वहाँ वे कहानियाँ न केवल कथ्य को सरस व हृदयगम्य बनाती हैं अपितु आधुनिक पाठकों के बौद्धिक स्तर के अनुरूप उसमें विश्वसनीयता के गुणों की प्रतीति भी करा देती हैं। ऊपर चर्चित दृष्टि से 'यह मेरे लिए नहीं', 'सावित्री नम्बर -दो,' तथा 'बन्द गली का आखिरी मकान' कहानियाँ दृष्टव्य हैं। उक्त कथोपकथनों का सम्बन्ध प्राय: भाषा-शैली से है अत: इनके उदाहरण यहाँ न देकर भाषा-शैली -विचार के अन्तर्गत ही देना अधिक समीचीन होगा।

भाषा-शैली :

वस्तुत: भाषा-शैली के साथ उसके साहित्यकार या शैलीकार विशेष का गहरा सम्बंध होता है। अमुक भाषा-संरचना अमुक साहित्यकार की है इस बात का सहज ज्ञान उसकी शैली विशेष के द्वारा ही किया जाता है। यह अवश्य है कि वह साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती या समकालीन साहित्यकारों की शैलियों से भी प्रभावित रहा हो। अत: डा0 भारती जी भी अवश्य ही अपने प्रिय लेखकों से किसी न किसी रूपांश में प्रभावित रहे हों, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता क्योंकि उन्होंने स्वयं यह लिखा है कि "और प्रिय लेखक भी कौन-कौन से थे ? शैले, आस्करवाइल्ड, टामस हार्डी, प्रसाद और शरत। और उम्र वह जब मन अपने चारों ओर कहानियाँ बुनने ही लगता है।"[1] इनमें से शैले, आस्कर वाइल्ड तथा प्रसाद प्रभृति लेखक प्राय: सौन्दर्यात्मिक कल्पना एवं उदात्त विचार प्रिय स्वच्छंद या रोमाण्टिक भाषा-शैली के साहित्यकार हैं। रोमाण्टिक भाषा

1- दे0 'चांद और टूटे हुए लोग(द्वि0 सं0 1967)' निवेदन-पृष्ठ-

प्राय: अभिव्यंजना के प्रतीकात्मक, बिम्बात्मक व संकेतात्मक या लाक्षाणिक जैसे अनेक उपकरणों के रूप में प्रस्फुटित होती है।

डा0 भारती जी स्वातंत्र्योत्तर नई पीढ़ी के सजग व लोकप्रिय समर्थ कहानीकार हैं। उन्होंने अवश्य ही अपने पूर्ववर्ती उक्त साहित्यकारों से प्रेरणा ग्रहण की है किन्तु एक प्रगतिशील साहित्यकार होने के नाते चमत्कृत एवं लाक्षाणिक भाषा-शैली के प्रयोग के साथ हीसाथ उसे युगानुरूप जन-साधारण के उपभोग्य योग्य बनाने की भी सहज चेष्टा की है। इस दृष्टि से डा0 भारती जी की किसी भी कहानी की भाषा-प्रकृति कोदेखकर उसके साहित्यकार या शैलीकार के व्यक्तित्व को बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है।

भाषा-शैली की दृष्टि से देखने पर डा0 भारती जी की कहानियों में जो विविधात्मक शैली-रूप उपलब्ध होते हैं वे मुख्यतया ये हैं -यथा-(1) आलंकारिक भाषा-शैली (2) चित्रात्मक -भाषा-शैली (3) हास्य-व्यंग्यात्मक भाषा-शैली (4) प्रतीकात्मक या लाक्षाणिक भाषा-शैली एवं ग्रामीण-भाषा-शैली। उक्त शैलियों में डा0 भारती जी को रूमानी-साहित्यकार कहीं न कहीं अवश्य ही अपनी उपस्थिति की झांकी करा देता है। यहां तक कि नैराश्य, करुणा और मृत्यु बोध के परिवेश में लिखी गई कहानियों में भी तथाकथित तथ्य को भलीभांति देखा जा सकता है। विशेषाकर `मरीज नम्बर-सात` और `सावित्री नम्बर-दो` आदि कहानियां ऐसी ही हैं। अस्तु यहां पूर्व निर्दिष्ट शैलियों का विशद विस्तृत विचार प्रस्तुत न कर संक्षिप्त रूप में केवल उनका उदाहरणात्मक जायजा लेना अनुचित न होगा।

आलंकारिक भाषा-शैली का प्रयोग बडे ही कलात्मक रूप से प्राय: प्रत्येक कहानियों में हुआ है। इस दृष्टि से विशेषाकर `मरीज नम्बर सात`, `धुआं`, `युवराज` और भूखा ईश्वर` आदि कहानियां विशेष उल्लेखनीय हैं। इसका एक उदाहरण

'मूखा ईश्वर' शीर्षक कहानी से देखिए - "पानी की चादर जैसे पंखों वाले देवदूत थे। गीत की उठान जैसी अप्सराएं थीं। बादलों की छांह जैसे देवता थे।"[1]

चित्रात्मक भाषा-शैली भी आलंकारिक भाषा के साथ मिलकर प्राय: कहानियों को काव्यात्मक भाषा का हृदयगम्य रूप प्रदान करती हुई दृष्टिगत होती है। इस दृष्टि से प्रेम और कला पर आधारित कहानियों की भाषा को देखा जासकता है। इसके साथ ही 'चांद और टूटे हुए लोग', 'मूखा ईश्वर', 'कुबेर', 'मंजिल', 'सावित्री नम्बर दो' तथा 'यह मेरे लिए नहीं' कहानियों में भी चित्रात्मक भाषा-शैली का प्रयोग देखते ही बनता है। प्राय: ऐसे उदाहरणों में भाषा की बिम्बात्मकता को भी देखा जा सकता है। 'यह मेरे लिए नहीं' कहानी से इसका एक उदाहरण प्रस्तुतव्य है - "क्वार-कार्तिक की ढलती रात की सर्दी खाया हुआ टूटता बदन हो, हवा में पडोस के अहाते में रात भर भरे हरसिंगार की गमक हो, छुट्टी के दिन की सुबह हो और तख्त पर लेटे-लेटे सीले बेडौल कमरे में बिना बुलाये आ जानेवाली इस चौकोर नन्हीं सी धूप को सिर्फ देखने, चुपचाप देखते रहने का बेहिसाब वक्त हो ---धीरे धीरे महसूस होता है कि यह धूप की तितली स्थिर नहीं है, प्रतिपल कांप ही नहीं रही है, धीरे धीरे खिसक रही है, आगे बढ़ रही है, और तब सहसा यह ध्यान आता है कि बाहर सूरज धीरे-धीरे उठ रहा है, उसी के अनुसार यहधूप जों-जों तिल-तिल खिसक रही है।"[2] उक्त उदाहरण में 'धूप की तितली' का सजीव एवं गत्यात्मक चित्रण किया गया है।

हास्य-व्यंग्यात्मक भाषा-शैली का प्रयोग विशेषत: 'युवराज', 'काला अवतार', 'मरीज नम्बर सात', 'मूखा ईश्वर' और 'आदमी का गोश्त' जैसी कहानियों में मिलता है। 'मूखा ईश्वर' शीर्षक कहानी से एक उद्धरण प्रस्तुत है -

---

1- वही- संग्रह- पृ0 79

2- क0 सं0- 'बन्द गली का आखिरी मकान' पृ0 51

`धीरे धीरे ईश्वर को कुछ परिवर्तन दीख पड़ा। चांदी की जगह पहले तांबे के थाल में आरती जलने लगी, धीरे-धीरे वह भी खत्म हुआ और अब कभी-कभी कोई आकर एक मिट्टी का दिया जला जाता था। पकवानों की जगह गुड़ चढ़ने लगा और एक दिन वह भी खत्म हो गया।

और एक दिन सुबह ईश्वर ने आंख खोली तो देखा वह मिट्टी का दिया भी बुझ चुका था। आसपास घास उग आयी थी और ऊपर डाल पर बैठा एक कौआ पूजागीतों की पैरोडी कर रहा है।"[1] प्रतीकात्मक एवं सांकेतिक भाषा-शैली का प्रयोग प्राय: पात्र विशेष की जटिल मन:स्थितियों के सटीक अंकन के समय या चरित्रोद्घाटन के लिए किया गया है। इसी प्रकार कथ्य को सम्प्रेषित बनाने के उद्देश्य से भी इन कहानियों में प्रतीकात्मक या संकेतात्मक भाषा-शैली का उपयोग किया गया है। इस दृष्टि से `यह मेरे लिए नहीं`, `सावित्री नम्बर दो, `चांद और टूटे हुए लोग, ``भूला ईश्वर` और `धुआं` शीर्षक कहानियां विशेष उल्लेखनीय हैं। इसका एक उदाहरण `यह मेरे लिए नहीं` कहानी से देखिए - `लेकिन अपर्णा ने मन की वह खिड़की फिर खोल दी जिसमें से आकाश और खुलाव और रोशनी झांकती है। यह बात जरूर है कि अब वहां ईश्वर नहीं था लेकिन जब कभी हर-सिंगार-बसी सुबह की ऐसी धूप का चतुष्कोण फर्श पर कांपता, पंख फड़फड़ाता दीखता तो दीनू इस घर-आंगन की घुटन, यतीम गरीबी और मां की कटुता सब भूलकर कुछ और सोचने लगता। इस पृथ्वी के परे, अनन्त आकाश में कहीं एक विराट सूर्य उग रहा है, आकाश में धीरे-धीरे चढ़ रहा है ताकि रोशनी का यह पंख उसके कमरे में, उसके सीलन भरे फर्श पर थाली में भरे गंगाजल सा कांपे।"[2] इसमें `हर-सिंगार-बसी सुबह`, फर्श पर कांपता, पंख फड़फड़ाता हुआ धूप का चतुष्कोण, `अनंत आकाश में उगता हुआ विराट सूर्य आदि बिम्बात्मक प्रतीक हैं। इनके माध्यम से दीनू

1- क0 सं0 `चांद और टूटे हुए लोग` - पृ0 78

2- क0 सं0 `बन्द गली का आखिरी मकान` - पृ0 58

की आस्था एवं जिजीविषा की भावना को उद्घाटित किया गया है।

ग्रामीण भाषा-शैली का प्रयोग विशेषकर `बन्द गली का आखिरी मकान` कहानी- संग्रह की चारों कहानियों में यत्र-तत्र सर्वत्र उपलब्ध होता है। इसका मुख्य कारण है डा0 भारती जी जिस यथार्थपरक परिवेश से टकराये हुए हैं वह परिवेश है इलाहाबाद के अहियापुर का मध्य एवं निम्नमध्यवर्गीय ग्रामीण समाज। अत: उक्त कस्बे की भाषा-बोली एवं शब्दों का प्रयोग भी होना स्वाभाविक ही है। इसका एक उदाहरण `गुलकी बन्नो` शीर्षक कहानी से देखिए - `घेघा बुआ की आवाज आई- `बेचारी बाप की अकेली सन्तान रही। एही के बियाह में मटियामेट हुई गवा। पर ऐसे कसाई के हाथ में दिहिस कि पाँच बरस में कूबड़, निकल आवा।``[1] इसी प्रकार `साच्छात गऊ` तपिश्शा``गिरिस्ताश्रम` `राच्छस` और `अन्याव` जैसे अपभ्रष्ट शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार गांवों में प्रचलित अंग्रेजी के `फैशन`, `कोट`, `पिक्चर`, `कैप्टन`, `हेडक्लर्क`, `मोटर`, `मास्टर`, `लीडरानी` आदि जैसे शब्दों का भी व्यवहार किया गया है।

भाषा को को मार्मिक एवं पैनी बनाने के लिए मुहावरों एवं लोकोक्तियों का प्रयोग भी प्राय: सर्वाधिक रूप से मिलता है। इसके कुछ मुहावरे दृष्टव्य हैं यथा `उड़ती चिड़िया पहचानना`, `रुआं सी होजाना,``दांत काटी रहना`, `थाली जहर लगना`, ताना मारना`, `महाभारत होना`, `बिजली छू जाना` आदि। इसी प्रकार `हमरे मरे पर कौन चुल्लू भरपानी चढ़ाई`, `मुंह लगायी डोमनी गावे ताल बेताल`, `कहीं परायों के चौके का अन्न तन-बदन में लगता है` `यमराज का एक दरवाजा पाताल में है।` जैसी लोकोक्तियों का भी खुलकर प्रयोग हुआ है।

1- वही- संग्रह, पृ0 4

अत: उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कहानीकार ने जहां एक ओर भाषा-शैली को आलंकारिक, लाक्षणिक या प्रतीकात्मक रूप दिया है वहीं दूसरी ओर उसे जन-भोग्य बनाने की भी चेष्टा की है। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जी के शब्दों में कहा जा सकता है - "कहानियों में मनोवैज्ञानिकता है, भाषा मंजी हुई कवित्वपूर्ण और मिथक तत्व एवं प्रतीकात्मकता लिए हुए है। वर्णन-शैली भी भारती की अपनी है। उसमें बारीकी रहती है, व्यंजना रहती है।"[1]

1- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय- 'द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य' पृ0 177